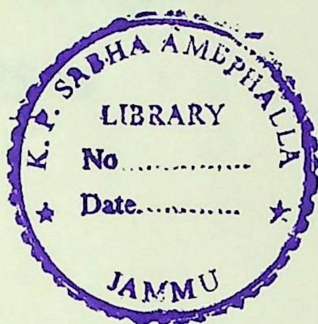
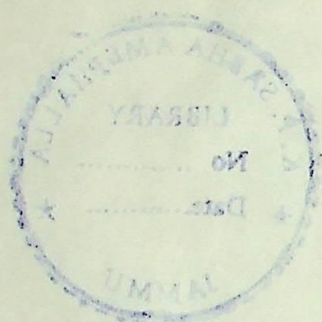


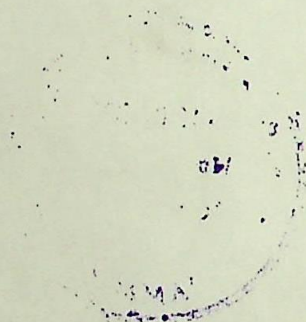


हमारा साहित्य

जे. एंड के. अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एंड लैंग्वेजिज़
जम्मू


K. P. SABHA AMEPHALLA
LIBRARY
No...............
Date..............
JAMMU





हमारा साहित्य

1995-96

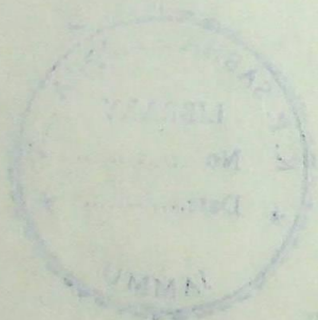
(विशिष्ट व्यक्तित्व विशेषांक)

संपादक

डॉ० उषा व्यास



जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लैंग्वेजिज, जम्मू



हमारा साहित्य—1995-96

(विशिष्ट व्यक्तित्व अंक) मूल्य : 33/- रुपये

जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लेंग्वेजिज़ द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण—1996

रोहिणी प्रिंटर्ज़, कोट किशन चंद, जालंधर शहर द्वारा मुद्रित

Hamara Sahitya 1995-96

(Prominent Personalities of Jammu)

Edited by : Dr. USHA VYAS

आमुख—

अनेक धर्म, मतवाद होते हुए भी मनुष्य तमाम भेदभाव मूलक आधारों से मुक्त होकर एक उदात्त मनुष्य के रूप में विकसित होता है और यही मनुष्यता का मूलाधार है।

एक बार भगवान बुद्ध शाल्यवन में एक वट वृक्ष के नीचे अपने शिष्यों से धर्म चर्चा कर रहे थे। तभी एक शिष्य ने पूछा, "भगवन्! कई लोग दुर्बल और साधनहीन होने पर भी वे महान कार्य कर दिखाते हैं जिन्हें समर्थ एवं, सम्पन्न जनों के लिये साधना दुष्कर होता है। ऐसा क्यों? तथागत् ने कहा "सुनो, वत्स! संसार में मनोबल ही सर्वोच्च है, वह जाग उठे तो असम्भव कार्य भी सम्भव हो उठते हैं और मनुष्य अप्रत्याशित सफलताओं के साथ सीधे साक्षात्कार करने लगता है।"

और......इसी मनोबल का रूपायन, जम्मू की मिट्टी की महक से परिपूरित ये व्यक्तित्व, जहां वाणी, विचार और कर्म का एक विलक्षण ऐक्य हैं, वहां कला, संस्कृति और साहित्य के अमर आख्यान भी जो अपनी निजता और वैयक्तिक वैशिष्टय के साथ जीवन मूल्यों के व्यापक धरातल पर एक अद्भुत साम्य लिए हुए हैं।

हमारी आशा हैं कि इनके जीवन से जुड़े वरेण्य एवं रोचक सत्यों को उद्घाटित करने की दिशा में हमारा एक अन्य प्रयास आपके लिए लाभकारी और सार्थक सिद्ध होगा। और आपका स्नेह-सहयोग हमारे साथ पूर्ववत् बना रहेगा।

☐ उषा व्यास

इस अंक में–



स्वामी नित्यानंद

स्वामी नित्यानन्द

□ डा० चंपा शर्मा

डुग्गर की इस महान विभूति स्वामी नित्यानन्द का जन्म विक्रमी संवत् 1927 ज्येष्ठ मास की प्रथम तिथि को एक प्रतिष्ठित ज्योतिषी चन्द्रमौली के घर कलर गांव में हुआ। इनके दादा का नाम वीणा था। कहते हैं, वह महाराजा गुलाब सिंह के राज-पुरोहित थे। स्वामी जी जाति के महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज महाराष्ट्र से आये थे। सर्वप्रथम वे जम्मू क्षेत्र के 'राया' गांव में आकर ठहरे फिर वे कश्मीर चले गये। वर्षों तक कश्मीर में रहने के उपरान्त वे कश्मीर छोड़ कर 'बलुआलते' आये और वहीं बस गये। कश्मीर से आने के कारण इन्हें कश्मीरी पण्डित कहा जाने लगा। इनका परिवार कब कलर आकर बसा, इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। यह भी कहा जाता है कि महाराजा गुलाब सिंह ने सन् 1840 ई० के आसपास उधमपुर नगर की नींव रखी थी, उस समय पुरोहित का कार्य चन्द्रमौली ने किया था और यह भविष्यवाणी भी की थी, कि सौ वर्षों के उपरान्त इस नगर का एक विशेष महत्व होगा और यह नगर भारत के मानचित्र पर उभर कर सामने आयेगा।

पण्डित चन्द्रमौली की ससुराल कलर गांव से 12 किलोमीटर दूर 'चढ़ेई' नामक गांव में थी। ससुर गोकुल चन्द पहाड़ी वस्तुओं के व्यापारी थे। वह चढ़ेई गांव के एक बड़े साहूकार थे। उनके चन्दूराम और कुंज लाल नामक दो बेटे थे। कुंज लाल 'कुंजू' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी नित्यानन्द जी की दो बहिनें थीं। स्वामी जी केवल ढाई वर्ष के थे, मातृ स्नेह से वंचित हो गये। शिशु नित्यानन्द का लालन-पालन करना पिता चन्द्रमौली के लिए एक चिन्ता का विषय बन गया। घर में दो लड़कियां और एक लड़का, बस इतना सा परिवार था। बच्चों की देखभाल के लिये कोई स्त्री नहीं थी। लड़कियां अभी छोटी थीं। दोनों बहिनों ने अपना स्नेह और दुलार नित्यानन्द पर उड़ेल दिया। उनके अपने सगे सम्बन्धियों ने चन्द्रमौली को दूसरा विवाह करने की सलाह दी। चन्द्रमौली ने इस राय को

ठुकरा दिया। पण्डित चन्द्रमौली अभी पत्नी की मृत्यु के शोक से मुक्त भी नहीं हुए थे कि उनकी मंझली लड़की की भी अचानक मृत्यु हो गई। इस घटना ने चन्द्रमौली को विचलित कर दिया और फिर वह अपने छोटे लाडले पुत्र नित्यानन्द के लिए चिन्तित रहने लगे।

अपनी नानिन की मृत्यु पर शोक प्रकट करने गोकुल चन्द जी अपनी धर्मपत्नी "निक्की" के साथ कलर गांव आये। अपने जमाई के दुर्भाग्य को देखकर रो उठे। बड़ी बहिन की गोद में बैठा नित्यानन्द भी सुबक रहा था। गोकुल चन्द का हृदय बच्चे की करुण दशा को देखकर रो उठा। उन्होंने अपने जमाई और नाती को अपने साथ चढ़ेई ले जाने की इच्छा व्यक्त की। चंद्रमौली मान गए। गोकुलचंद और उनकी धर्मपत्नी निक्की नित्यानन्द को अपने साथ चढ़ेई ले आये। गोकुलचंद ने दो विवाह किये थे। उन की पहली पत्नी नित्यानन्द की सगी नानी की मृत्यु हो चुकी थी। गोकुलचंद ने दूसरा विवाह किया। उनकी पत्नी को गांव के लोग 'निक्की' कहते थे। घर में निक्की का राज चलता था। निक्की का अपना कोई बच्चा नहीं था। उसने शिशु नित्यानंद का पालन-पोषण अपने बेटे की तरह किया। छोटी-छोटी असुविधा का ध्यान रखती और उसकी रुचि अनुसार भोजन पकाती। अपना सारा वात्सल्य उस पर निछावर कर दिया। नित्यानन्द के बड़े मामा कुंजू साहूकार भी अपने भान्जे के साथ अधिक स्नेह करते थे। उनके लिए कसाली से पहाड़ी फल मंगवाते। इनके छोटे मामा चन्दूराम इन्हें अपनी पीठ पर बैठाकर चढ़ेई की गलियों में घुमाते। उन दिनों चढ़ेई एक बड़ा गांव था। पहाड़ की तलहटी में बसे इस गांव की अपनी ही प्राकृतिक शोभा थी। उस समय गांव में 70-80 घर थे और 10-12 दुकानें थी। बाजार में छोटी-सी भीड़ लगी रहती थी। मुत्तल, समोल. धन्तु, संदरानी, लड्डा, जंगल गली आदि गांव के लोग वस्तुएं खरीदने यहीं आते थे। वह आती बार अपने साथ अखरोट, खुमानी, दातुन, अनारदाना, बनफशा, रसौंत, घी और शहद लाते और बदले में गुड़, नमक. कपड़े, तेल और तम्बाकू आदि लेकर घर जाते। चढ़ेई में सब से बड़ी दुकान गोकुल साहूकार की थी। नित्यानन्द दुकान पर बैठ कर हो रहा व्यापार देखते रहते थे।

वह प्रात: कभी अपनी नानी निक्की के साथ, और कभी अपने नाना या मामा के साथ स्नान करने घग्घा जाते थे। हरे-हरे पेड़ों की छाया में बैठ कर झरने के बहते हुए पानी के संगीत को निहारते रहते। घग्घा एक रमणीक स्थान था। यहां कई सुन्दर बावलियां थीं, जिनकी दीवारें पौराणिक देवी-देवताओं की मूर्तियों से सुसज्जित थीं। नित्यानन्द इन मूर्तियों को बड़े ध्यान-पूर्वक देखते। एक दिन उन्होंने अपने नाना जी से पूछा, "नाना जी यह अति

सुन्दर बगीची किसने लगवाई है।" उत्तर में गोकुलचंद ने बताया, "बेटा यह बाग घग्घा सिंह ने लगवाया था।" वह कुछ समय के लिये रुके और फिर बोले, "बेटा घग्घा सिंह यहां का राजा था। जिज्जा जाति का था। एक बार राजस्थान के कुछ कारीगर उसके दरबार में आये और कहने लगे—महाराज हमारे देश में अकाल पड़ा है। हम परिवार सहित भूखे मर रहे हैं। हम पत्थर का काम जानते हैं। यदि आप आज्ञा दें, तो हम आपके लिये एक सुन्दर महल का निर्माण करें। घग्घा सिंह कहने लगा—"तुम मेरे लिये नहीं, मेरी प्रजा के लिगे एक सुन्दर वाटिका का निर्माण करो, और उसे अपनी अनूठी तथा विलक्षण कला से सजा दो। मैं आपको तथा आपके परिवार को भोजन दूंगा। पुरस्कार भी दूंगा।" कारीगर काम में जुट गये। उन्होंने यह सुन्दर मूर्तियां बनाकर बावली की दीवारों को सजा दिया।" "नाना जी! मैं भी बड़े होकर वाटिका लगाना चाहता हूं। मेरी वाटिका इस वाटिका से सुन्दर होगी।" शिशु नित्यानन्द ने बड़े आत्मविश्वास के साथ यह बात कही थी। नित्यानंद को जब भी समय मिलता, घर से भाग कर घग्घे आ जाते। कभी जलकुंड के समीप बैठकर पानी को निहारते और कभी नीचे आकर बने जल प्रपात का नजारा देखते।

नित्यानन्द ने जब छठे वर्ष में प्रवेश किया, तो नाना गोकुलचंद ने उन्हें अक्षर-बोध के लिये गांव के पण्डित रघुनाथ के पास भेजा पण्डित रघुनाथ की पाठशाला कभी उनके घर और कभी घग्घा में स्थित रघुनाथ मन्दिर के प्रांगण में चलती। नित्यानंद जी के जोर डालने पर पण्डित रघु ने पाठशाला को स्थायी रूप में रघुनाथ मन्दिर घग्घा में चलाना प्रारम्भ कर दिया। पास-पड़ौस के गांवों के बच्चे पाठशाला में प्रवेश के लिये आ पहुंचे। पाठशाला अच्छी चलने लगी। पाठशाला के विद्यार्थियों में यह सबसे कुशाग्र बुद्धि वाला था। पण्डित रघु ने उसकी विलक्षण बुद्धि को देख कर गोकुलचद से कहा—'साहूकार जी, इस हीरे को पढ़ने के लिये काशी भेज दो। यह बालक बहुत बड़ा विद्वान बनेगा।" गोकुलचद साहूकार ने पण्डित जी की बात अनसुनी कर दी। गोकुलचन्द के दोनों बेटे विवाहित थे, परन्तु उनकी कोई सन्तान न थी। गोकुलचद सोचते थे कि पौत्र तो हुआ नहीं चलो व्यापार सम्भालने के लिये नाती ही सही। इसलिये वह उसे अधिक शिक्षा देने के पक्ष में नहीं थे।

एक दिन नित्यानन्द पाठशाला से पढ़कर घर पहुंचे, तो दालान में अपने पिता को चारपाई पर बैठा देख कर वह आश्चर्य से ठगे रह गये। उनके पिता पहली बार उनसे मिलने चढ़ैई आये थे। इन्होंने अपने पिता को प्रणाम किया और फिर नीचे बिछे आसन पर बैठ गये। उसी समय इनके नाना तथा मामा भी

घर आ पहुंचे । बातों का दौर आरम्भ हुआ, चंद्रमौली ने कहा उन्होंने अपनी लड़की के लिये वर देख लिया है। लड़के का नाम लक्ष्मण दत्त है और वह रणवीर पाठशाला में आचार्य पद पर नियुक्त है । लड़का सभ्य है और सुशील भी । जाति गोत्र सब ठीक है ।'' जमाई की बात सुन कर गोकुलचंद ने अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा—"तो लड़की के हाथ जल्दी से पीले कर देने चाहियें । नित्यानंद जी अपने ननिहाल वालों के साथ बहिन के विवाह में शामिल होने कलर (उधमपुर) चले गये। कुछ दिनोपरान्त इनकी बहिन तथा बहनोई कलर आये । इनके बहनोई ने इनसे पढ़ाई सम्बन्धी कितने ही प्रश्न किये । जब वह इस बात से सन्तुष्ट हो गये कि लड़का बुद्धिमान है, तब उन्होंने अपने ससुर से नित्यानन्द को जम्मू भेजने का अनुरोध किया और रघुनाथ पाठशाला में प्रवेश दिलवाने का दायित्व अपने ऊपर ले लिया । पण्डित चंद्रमौली ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, परन्तु गोकुल चंद को यह प्रस्ताव अच्छा न लगा । निक्की ने इन्हें अपनी आंखों से दूर करने से साफ इन्कार कर दिया, परन्तु लक्ष्मण दत्त के समझाने पर सभी मान गए । नित्यानन्द अपने बहनोई के साथ जम्मू चले गये ।

कलर से जम्मू आकर नित्यानन्द ने रणवीर पाठशाला जम्मू में प्रवेश ले लिया । कुछ दिन तो वह अपने बहनोई के साथ रहे। फिर छात्रावास में चले गए । पाठशाला के प्रधानाचार्य गोकुलचंद के आत्मज श्री गंगाधर जी थे ।

नित्यानंद जी गंगाधर के शिष्य बन गए । इन्होंने पाठशाला में गणित शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र, तर्क शास्त्र, व्याकरण और साहित्य का गूढ़ अध्ययन किया । ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन इन्होंने अपने बहनोई लक्ष्मण दत्त के सम्पर्क में रह कर किया । इन्हें उर्दू फारसी और अंग्रेजी का काम चलाऊ ज्ञान था । इनमें गुरु गंगाधर की साहित्यिक रचनाएं 'आनन्द-लहरी' और 'बड़वानल' प्रकाशित हुईं, उन्हीं को पढ़कर इनके मन में साहित्यिक चेतना जागृत हुई और इन्होंने संस्कृत में कई छोटी-छोटी रचनाओं का सृजन किया । कालिदास इन्हें प्रिय था । इसीलिये इन्होंने कालिदास के समग्र साहित्य का अध्ययन भी किया । प्राज्ञ और विशारद की परीक्षाएं पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर से पास कीं । फिर शास्त्री की परीक्षा में जुट गये इनके अध्यापकों और सहपाठियों को पूरी आशा थी कि शास्त्री परीक्षा में यह प्रथम आयेंगे । इनके बहनोई लक्ष्मण दत्त की इच्छा थी कि शास्त्री पास करने के उपरान्त इनकी नियुक्ति रघुनाथ पाठशाला में हो जाये ।

नित्यानन्द जी एकान्त में पढ़ने के लिये पीरखोह जाते थे। एक बार इनकी भेंट एक अज्ञात योगी से हुई। उस योगी के व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुये कि इनके मन में उनका शिष्य बनने की इच्छा पैदा हुई। उस योगी ने इन्हें योग के कुछ आसन बतलाये। योग मार्ग का परिचयात्मक ज्ञान दिया और फिर वह वहां से अदृश्य हो गये। इन्होंने उस योगी की बहुत तलाश की, परन्तु उसका कोई पता न चल सका। इस घटना से इनका मन विरक्त रहने लगा। इन्होंने मन ही मन योगी बनने की ठान ली। रणवीर पुस्तकालय में योग सम्बन्धी पुस्तकों का इन्होंने गूढ़ अध्ययन किया, परन्तु बिना गुरु के योग साधना में इन्हें कठिनाई आने लगी।

नित्यानन्द के पिता को जब इस बात का आभास होने लगा कि इनका मन पढ़ने में कम और योग साधना की ओर अधिक अग्रसर हो रहा है, तो उन्होंने इनके विवाह की तैयारी आरम्भ कर दी। पिता ने इन्हें बिना बताये 'जाड़' गांव के बलकुलिये ब्राह्मण की लड़की के साथ रिश्ता पक्का कर दिया। विवाह के लिये इन्हें कलर बुलवा लिया गया। नित्यानन्द को जब पता चला कि इनके सम्बन्धी और भाईचारे के लोग इनके विवाह के लिये कटिबद्ध हैं तो एक दिन प्रात: उठे और सूर्य उदय होने तक यह 'जाड़' गांव अपनी मंगेतर के घर पहुंचे। आवाज़ दी, दरवाजा खुला, सामने वही लड़की खड़ी थीं। नित्यानन्द ने सहज भाव से क्या—"बहिन मैं तो आपसे राखी बंधवाने आया हूं। तो शीध्रता से मेरे हाथ पर राखी बांधो"। लड़की को इस बात का पता न था कि उसके सामने उसका मंगेतर खड़ा है। वह भीतर जाकर डोरी लाई और इन्हें राखी बांधी। राखी बंधवा कर इन्होंने लड़की से कहा—"पण्डित जी को बता देना कि कलर के पण्डित चंद्रमौली का लड़का नित्यानन्द आया था, राखी बंधवा कर चला गया।" नाम सुनते ही लड़की अपना सिर पकड़ कर बैठ गई।

जब पण्डित चन्द्र मौली को इस घटना का पता चला तो वह बड़े दु:खी हुए। उन्हें चिन्ता सताये जा रही थी, कि यदि उन का पुत्र विवाह नहीं करेगा, उनका कुल कैसे चलेगा। नित्यानन्द कलर से सीधे जम्मू चले गए। जम्मू में इनके बहनोई को सारी बात का पता चल चुका था। बहिन ने अपने पास बुलाकर कहा "नितु! यदि तुम्हें गांव की लड़की पसन्द नहीं थी, तो मुझे बता देते। खैर जो हुआ सो हुआ, अब मैं तुम्हारे लिए शहर की लड़की देखूंगी।" "तुम्हें लड़की ढूंढने की आवश्यकता नही है, मैं विवाह नहीं करूंगा। मैं तो योगी बनूंगा।" इनके गुरुओं ने भी इन्हें पास बैठाकर कुल परम्परा की बात समझाई, परन्तु इनकी एक ही रट थी, "मैंने तो योगी बनना है, मुझे योग साधना करनी है।"

एक दिन नित्यानन्द का छात्रावास से गायब होना सारी पाठशाला में चर्चा का विषय बन गया। जगह-जगह ढूंढने का प्रयत्न किया गया, किन्तु इन का कोई पता न चल सका। यह रेल से लाहौर पहुंचे। इनके पास कुछ योग सम्बन्धी पुस्तकों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। लाहौर पहुंच कर इन्होंने कुछ समय के लिए एस० डी० विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। पढ़ाई में मन न लगा। लाहौर स्थित सभी मन्दिरों में योगियों की तलाश की। अन्त में इन्हें कपूरथला के एक योगी मिले। उन्होंने इन्हें योग सम्बन्धी शिक्षा देना स्वीकार कर लिया। गुरु ने इन्हें मन्त्र योग, हठयोग, लय योग और राज योग की साधना तथा इन सब के महत्त्व का ज्ञान दिया। इन्हें सिद्धि स्वास्तिक, पद्म भद्र आदि तैंतीस अति सिद्धिदायक आसनों की जानकारी दी। इन्हें रेचक कुम्भक और पूरक तीन प्रकार के प्राणायाम भी सिखाए। फिर इनके योगी गुरु हिमालय की ओर भ्रमणार्थ चले गए। शास्त्री की परीक्षा का समय आ गया था। परीक्षा में बैठने से पहले इन्होंने सोचा, "ज्ञान उपाधियों में परिसीमित नहीं है। उपाधियां लेकर नौकरी तो करनी नहीं, यही सोचकर इन्होंने परीक्षा में बैठने का विचार मन से निकाल दिया और गुरु की तलाश में हिमालय की ओर प्रस्थान किया। इन्होंने हिमालय के एक छोर से दूसरे छोर तक का भ्रमण किया, परन्तु गुरु दर्शन नहीं हुए। इनकी भेंट कई साधु सन्तों और योगियों से हुई। इन्होंने एक नेपाली योगी से योग साधना के गुर समझे और अपने ज्ञान में वृद्धि की, परन्तु उपयुक्त मार्ग दर्शक न होने के कारण इन के मन को सन्तुष्टि नहीं हुई। यह स्थान-स्थान, वन-वन पर्वत-पर्वत भ्रमण करते-करते भटकने लगे। जब यह पंचारी शंखपाल देवता के मन्दिर पहुंचे, तो वहां पर अचानक इन की भेंट अपने गुरु से हुई, तो दौड़ कर श्रद्धापूर्वक अपने गुरु के चरणों से लिपट गए, गुरु ने प्रसन्न होकर अपने शिष्य को कंठ से लगा लिया। अपने गुरु से योग विद्या की अनेक युक्तियां सीख कर किसी एकांत स्थान में बैठकर कुछ दिन कठोर तपस्या की और बाद में चढ़ैई के निकट 'डूमका सूई' नामक स्थान पर आ पहुंचे। यहां एक प्राचीन खण्डरित हवेली थी। यहीं पर इन्होंने योग की कठिन साधना की। गांव की स्त्रियां और पुरुषों को जब यह पता चला कि कोई युवक योगी के वेष में 'डूमका सूई' में रहता है. उसके दर्शनों के लिए वे झुंड के झुंड वहां आने लगे। कुछ स्त्रियां इस योगी के लिए स्वादिष्ट भोजन लातीं। गांव की एक सुन्दरी योगी पर मोहित हो गई। योगी जब साधना में बैठता तो वह पानी भरने का बहाना बनाकर आ पहुंचती। एक दिन साधनारत योगी को उस सुन्दरी ने कंकड़ मार कर छेड़ा। इससे योगी का ध्यान भंग हो गया। उन्होंने उस सुन्दरी से पूछा, "तुम्हें क्या चाहिए ?" सुन्दरी ने वेहिचक कह दिया' "तुम !" वह क्रोधित हो उठे। और अपना शरीर-घायल करने लगे। लोगों के पहुंचने तक

योगी मूर्छित हो चुका था। गांव के वैद्य ने योगी की चिकित्सा की : गांव का साहूकार गोकुलचन्द जब उस योगी को देखने आया, तो उसने योगी को पहचान लिया। "यह तो मेरा नाती नित्यानंद है।" स्वस्थ होने पर नित्यानंद फिर साधनारत हो गए। उन्होंने अपने गुरु की कृपा से अणिमा, महिमा और लघिमा सिद्धियां जो शरीर से सम्बन्धित थीं, प्राप्त कर लीं। इन्द्रियों से सम्बन्धित प्राप्ति की सिद्धि भी इन्हें प्राप्त हो चुकी थी। लौकिक और पारलौकिक पदार्थों का अनुभव करवाने वाली प्रकाम्य सिद्धि भी इन्हें प्राप्त हो चुकी थी। इन्हें ईशिता, वशिता, कामवसायिता सिद्धियां भी प्राप्त हो गईं। इनमें इतनी शक्ति हो गई, कि यह भूत वर्तमान और भविष्य के अदृश्य विषयों को समझने लगे। दूर की वस्तु को देखना और दूर की बात सुनना इनके लिए सरल हो गई। गुरु कृपा से ईड़ा पिंगला और सुषुम्ना आदि मूलाधार की प्रधान नाड़ियों का भी अनुभव प्राप्त कर लिया। स्वाधिष्ठान, मणिपुर अनाहत और विशुद्ध चक्रों को आवेष्टित करके आज्ञा चक्र तक इन्हें नाड़ियों के पहुंचने का परिज्ञान हो गया। मूलाधार से लेकर आज्ञा चक्र तक जो षट चक्र हैं उनका भेदन करने में भी इन्हें सफलता मिली। जब यह योग की पांचवीं में पहुंचे तो इन्हें नाद सुनाई देने लगा। इससे साधना में कुछ कठिनाइयां भी आईं : यह सच्चे मन से अपनी साधना में जुटे रहे। अन्त में एक दिन इन्हें ज्ञान का प्रकाश उपलब्ध हो गया।

एक दिन साधनारत इनके गुरु को जब इनकी उपलब्धि का ज्ञान हुआ, तो वह इनके पास आए और कहा, "वत्स! जिस प्रकाश को पाने के लिए मैं कई वर्षों से भटक रहा था तुम ने उसे प्राप्त करके मेरा सम्मान बढ़ाया है। वत्स! इस स्थान पर तूने ज्ञान प्राप्त किया है, इसलिए आज से यह स्थान "ज्ञानकोट" नाम से जाना जायेगा। वत्स! अब तुम विश्वभ्रमण करके योग द्वारा सांसारिक प्राणियों के कष्टों को दूर करो।"

गुरु का आदेश मिलने पर नित्यानंद ने भारत भ्रमण की तैयारी कर ली। वह घूमते-घूमते काशी पहुंचे। वहां उनकी भेंट महामना मदन मोहन मालवीय के साथ हुई। दोनों एक दूसरे के मित्र बन गए। इन्होंने गंगाघाट के समीप एक कुटिया बना ली। इनकी प्रसिद्धि समस्त काशी में फैल गई। सैंकड़ों लोग इनके दर्शन करने गंगाघाट आने लगे। एक दिन मदनमोहन मालवीय के साथ जम्मू कश्मीर राज्य के नरेश प्रतापसिंह इनके दर्शनों के लिए आये। महाराजा इनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए, इनके पांव छू कर कहने लगे—"महाराज! आप मेरे राज्य को अपने चरण स्पर्श से पवित्र करें।" मदनमोहन मालवीय ने महाराजा को जब यह सुनाया कि योगीराज की जन्मभूमि भी जम्मू-काश्मीर प्रांत है तो। यह सुनकर महाराजा ने इनके चरण पकड़

लिए और हाथ जोड़कर बिनती की, कि वह जम्मू पधार कर राजगुरु का पद ग्रहण करें। मदनमोहन मालवीय के अनुरोध पर इन्होंने महाराजा प्रतापसिंह का जम्मू चलने का अनुरोध तो स्वीकार कर लिया परन्तु राजगुरु का पद स्वीकार करने से स्पष्ट मना कर दिया।

नित्यानन्द जी काशी से निकल कर भारत के अन्य कई तीर्थ-स्थानों का भ्रमण करते हुए एक दिन जम्मू पहुंचें। जब महाराजा प्रतापसिंह को इनके आगमन की सूचना मिली तो वह अपने दरबारियों को साथ लेकर इनके पास आए और अनुरोध करके महलों में ले आये। कुछ दिन स्वामी जी महलों में रहे। बाद में महाराजा को अपनी इच्छा से अवगत करवाया, कि वह जंगल में किसी एकांत स्थान पर एक कुटिया बनाकर रहना चाहते हैं। महाराजा ने इन की इच्छा पूर्ति के लिए पीर खोह के समीप एक कोठी में इनके रहने का प्रबन्ध किया। इन्हें राजसी जीवन पसन्द नहीं आया, इसलिए कोठी का परित्याग कर दिया। अन्त में महाराजा ने अमर महल के नीचे (वर्तमान कर्ण नगर के उपरी भाग में) इनके रहने के लिए एक कुटिया बनवाई। स्वामी जी उस कुटिया में रहने लगे। महाराजा और उनके दरबारी प्रतिदिन सूर्यास्त के समय इनके दर्शन करने आया करते थे। महारानी चाड़क भी अपनी सखियों और दासियों के संग इनके दर्शन करने आती थी।

जम्मू-कश्मीर के दरबार से जुड़े लोगों को जब इस बात का पता चला कि महाराजा प्रतापसिंह नित्यानन्द जी की तो कोई बात नहीं टालते परन्तु प्रशासनिक नियुक्तियों के विषय में हम से किसी प्रकार का कोई विचारविमर्श नहीं करते, तब उन्होंने स्वामी जी को अपने घेरे में लेने का प्रयत्न किया। महाराजा इन्हें 'स्वामी' नाम से सम्बोधित करते थे। इसलिए सभी इन्हें 'स्वामी' कहने लगे। इन की कुटिया में प्रदेश के कई प्रभावशाली मन्त्री, उच्चाधिकारी तथा अतिविशिष्ट लोग बैठे रहते थे। कोई इनके पांव दबाता तो कोई सिर। जितने भी लोग इनके दर्शनों के लिये आते, उनमें अधिकतर केवल स्वार्थ भाव से आते। कोई नियुक्ति के लिए प्रार्थना करता तो कोई स्थानांतरण के लिए। स्वामी जी दरबारियों की नब्ज़ पहचान चुके थे। दरबारी भी दो गुटों में बंटे थे। कुछ लोगों की वफादारी राजा अमरसिंह के साथ थी, तो कुछ लोगों की महारानी चाड़क के साथ। परन्तु इन दोनों गुटों की वफादारी स्वामी जी के साथ थी। राजा अमरसिंह तो स्वामी जी के पक्के शिष्य बन चुके थे। कहने को स्वामी जी ने राजगुरु का पद ग्रहण नहीं किया था, परन्तु महाराजा और उनका परिवार उन्हें राजगुरु ही मानते थे। जम्मू नगर के कई प्रतिष्ठित परिवारों ने भी इन का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया था। महाराजा प्रतापसिंह जब छः मास के लिये

श्रीनगर जाते तो अपने साथ स्वामी जी को भी ले जाते थे। स्वामी जी तब शेरगढ़ी में एक कुटिया में निवास करते थे।

राज दरवार के साथ जुड़ने के उपरांत स्वामी जी को अनुभव हुआ, कि उनकी साधना में विघ्न पड़ने लगा है, तो उन्होंने जम्मू और श्रीनगर की सरकारी कुटिया को छोड़ने का निश्चय कर लिया और वह पुन: चढ़ई आ गए।

स्वामी जी को ज्ञान का प्रकाश ज्ञानकोट में मिला था। उन्हें इस स्थान के साथ एक विशेष लगाव था। इनकी बाल्यावस्था भी यहीं बीती थी। ज्ञानकोट में एक प्राचीन हवेली थी। कहा जाता है, उस में सन् 1857 ई० की लड़ाई का एक सेनानायक लड़ाई के उपरांत छद्म वेष में यहां आया था। वह एक मराठा योद्धा था। जम्मू-कश्मीर सरकार ने उसके लिए एकांत स्थान देख कर यह हवेली बनाई थी। उसके जाने के उपरान्त इस हवेली को हटाकर यहां स्वामी जी के रहने के लिये एक कुटिया बनाई। उन्होंने ज्ञानकोट में एक सुन्दर और रमणीक वाटिका भी लगवाई। अशोक और कई दुर्लभ वृक्षों को उन्होंने रोपित किया। स्वामी जी ने इस वाटिका में संस्कृत पाठशाला का संचालन किया। स्वामी जी के दर्शनों के लिये सैंकड़ों श्रद्धालु ज्ञानकोट में आते थे। ज्ञानकोट की वाटिका इन्द्र बन के समान थी, परन्तु जब इस वाटिका का दुरुपयोग होने लगा, तो स्वामी जी ने क्रोधित होकर पेड़ काट डाले और पौधे उखाड़ बाहर फैंक डाले। उनके क्रोध को एक वृद्धा ने यह कह कर शाँत किया कि "महाराज! पहले मेरा सिर काटो, उसके उपरांत ही इन वृक्षों को काटें। उस वृद्धा के आगे आने के कारण ही ज्ञानकोट के कुछ वृक्ष वच पाये।

स्वामी जी ज्ञानकोट का परित्याग करके घग्घे आ गये। यहां इन्होंने एक छोटी-सी कुटिया बनाई। चिनार के कई वृक्ष लगवाये। पाठशाला का फिर से संचालन किया। घग्घे में कुछ दिन साधनारत रहने के पश्चात् उन्होंने घग्घा को यह कह कर छोड़ दिया कि "यह तपोभूमि बनी रहेगी। जो भी मनुष्य यहां साधना करेगा, उसकी साधना सफल होगी।

सन् 1935 ई० के आस-पास स्मामी जी पैंथल आ गए। पैंथल गांव के मध्य में एक सुन्दर सरोवर है। स्वामी जी को सरोवर का निकटवर्ती क्षेत्र पसन्द आ गया। उन्होंने अपने रहने के लिए एक कुटिया बनाई। उनकी कुटिया बहुत सादी और छोटी थी। उन्होंने सरोवर के निकट कई वृक्ष लगवाये। तालाब में कमल के फूल लगवाये। कुटिया के आंगन में चिनार का वृक्ष

और पीछे सफेदे के वृक्ष लगवाये। इस से पैंथल की शोभा और भी बढ़ गई। पैंथल भी एक सुन्दर फूलदान की भांति दिखाई देने लगा। स्वामी जी ने पैंथल में रह कर योग साधना के क्षेत्र में कुछ और उपलब्धियां भी प्राप्त कीं। उन्होंने यहां कई ग्रंथों और साहित्यिक रचनाओं का अध्ययन किया। उनके शिष्य दल दर्शन करने गांव में आते थे।

पैंथल के शांत वातावरण में उन्होंने लेखन कार्य की ओर अधिक ध्यान दिया। उन्होंने गांव के पण्डितों के लिए 'त्र्योदश रत्न विवाह प्रकाश' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में हिन्दू संस्कारों को सम्पन्न करवाने के लिए सरल भाषा का प्रयोग किया है। यह पुस्तक डुग्गर के पंडितों में बहुत प्रचलित हुई। सन् 1937 ई० में इस का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। यह संस्करण बम्बई संस्कृत प्रैस सैद मीठा बाजार से शांतिलाल जैन के प्रबन्ध में प्रकाशित हुई। इस संस्करण का संशोधन देवराज शर्मा ने किया है। इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या एक सौ तीन है। पुस्तक के अन्तिम पृष्ठों में पण्डित पुरोहित, नाई, कुम्हार बढ़ई लोहार को दी जाने वाली राशि भी निश्चित की गई है। स्वामी जी ने यह पुस्तक लिख कर हिन्दू समाज में व्याप्त कई कुरीतियों को समाप्त करवाया। उन्होंने विवाह में पिता और मामा की मिलनी को ही सही बताया है। उन्होंने दहेज की सीमा निश्चित की ओर आदेश दिया कि लड़की वालों की ओर से लड़के को कुछ कपड़े, दो चारपाइयां और नौ बरतन दिये जाएं। दहेज प्रथा की उन्होंने कड़ी आलोचना की। उन्होंने बारात में सगे सम्बन्धियों को ही शामिल होने का आदेश दिया। वह सादा विवाह के पक्षधर थे।

स्वामी जी की दूसरी पुस्तक का नाम "योग का सीधा मार्ग" था। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण सन् 954 ई० में प्रकाशित हुआ। पहले संस्करण की एक भी प्रति लेखक को प्राप्त नहीं हुई। पुस्तक के आरम्भ में और अन्त में लेखक का नाम प्रकाशित हुआ है। पुस्तक के अन्त में उन्होंने अपना पता इन शब्दों में लिखा है।

नित्यानंद, तुच्छ सेवक
गांव पैंथल, जिला उधमपुर
(जम्मू कश्मीर प्रदेश)

पुस्तक पर "लोक-उपहार" अंकित है। इस पुस्तक में योग का महत्व योगासन, योगाभ्यास आदि विषयों की व्याख्या अति संक्षिप्त और सरल शब्दों में की गई है। इस पुस्तक में लेखक ने अपने अनुभवों की चर्चा की है। पैंथल में रहते स्वामी जी का साहित्य के प्रति लगाव अधिक हो गया। उन्होंने दीनू भाई पंत से रवीन्द्रनाथ टैगोर शरत् चन्द्र और बंकिमचन्द्र की पुस्तकें लेकर

पढ़ीं। उन्होंने प्रेमचन्द का भी समूचा साहित्य पढ़ा। दोपहर को स्वामी जी गांव के लोगों को डोगरी भाषा में कहानियां सुनाते। उन्हें वेद, उपनिषद् पुराण, दर्शन शास्त्र और महाकाव्यों का तात्तविक ज्ञान समझाते। स्वामी जी ने गांव के बच्चों को और युवाओं को शिक्षा के प्रति जागरुक किया तथा भविष्यवाणी की कि "यह गांव सरस्वती पुत्र पैदा करेगी। यहां के लोग साहित्य के क्षेत्र में विशेष यश प्राप्त करेंगे।

"आई लहर फकीर की दिया झोंपड़ा फूंक।"

एक दिन दोपहर को स्वामी जी ने पैंथल स्थित अपनी कुटिया को आग लगा दी। लोग आग बुझाने के लिये एकत्रित हुए, तो इन्होंने, उनको रोक दिया, हंसते-हंसते कहने लगे—"आग की लपटों का नजारा देखो।" देखते ही देखते कुटिया जल कर राख हो गई। कुटिया जलाकर स्वामी जी कटरा चले गये।

स्वामी जी को 'ढाबा' स्थान मन भा गया। (यह वही स्थान है, जहां से यात्री वैष्णों देवी के दर्शन के लिए सीढ़ियां उतरते हैं) यहां पानी के कई झरने हैं। एक छोटी-सी कुटिया बना कर स्वामी जी कुछ समय यहां रहे। यहां का वातावरण बहुत शांत था, इसलिये योग साधना के लिये यह स्थान उपयुक्त था। स्वामी जी कई बार रघुनाथ मदिर कटरा में भी रहने के लिये जाते थे। और कई बार दांयें के चौवारे भी रहते। कटरा रहते हुए भी उनका पंथल से लगाव रहा। पैंथल निवासी उनके जाने से दुःखी थे। उन्होंने स्वामी जी के लिये एक नई कुटिया बनाई और यज्ञ रचा कर स्वामी जी को पैंथल ले आये। यज्ञ करवाने के उपरान्त स्वामी जी पैंथल में रहने लगे। अनुयाइयों की संख्या बहुत अधिक थी। श्रद्धालुओं के लिये पैंथल एक तीर्थ स्थान बन गया था।

पैंथल की पूर्व दिशा में झज्झर नाले के उपरी भाग के मध्य में जराल कोट नामक एक प्राचीन किला था। उस किले के बाहर एक छोटी-सी गुफा में भोमेश्वरी देवी की पिंडियां संस्थापित थीं। सातवीं शताब्दी से डडबाल जरालों से यह किला छीन लिया था। जरालों के वहां से भागने के बाद यह स्थान खंडहरों में बदल गया। देवी स्थान को घनी झाड़ियों ने अपनी लपेट में ले लिया।

एक रात स्वामी जी को उस देवस्थान का आभास हुआ। प्रात: शीघ्र उठकर वह इस किले की ओर आ गये। गांव के लोग भी उनके साथ हो लिये। उन्होंने वहां से झाड़ियां उखाड़ कर उस स्थान को साफ किया। देवी स्थान प्रकट हो गया। जमीदारों ने सत्तर बीघे भूमि देवी स्थान के लिये दे दी। स्वामी जी ने वहां एक मन्दिर बनवाया और छज्जू नाम के एक योगी को वहां

का प्रबन्धक नियुक्त किया। स्वामी जी ने एक आश्रम बनवाया था, वहां एक पक्का मंदिर है और एक कुटिया है। उन्होंने आश्रम में वसंत पंचमी के मेले का आयोजन भी करवाया।

सन् 1964 ई० में उन्होंने घोषणा की कि वह शरीर त्यागने की सोच रहे हैं। उन्होंने अपनी कुटियां के प्रांगण में चिनार के वृक्ष तले अपनी समाधि के लिये स्थान निश्चित कर लिया और अपने अनुयायियों से कहा—

होगा दरखत गोर का, मेरी चिनार का

(मेरी समाधि पर चिनार का वृक्ष होगा) यह सुनकर उनके अनुयायी उनके आस-पास रहने लगे। सबके चेहरों पर उदासी छा गई। उन्होंने अपने शिष्यों को अपने पास बैठा कर कहा—"एक ऐसा दीपक जिस में तेल भी हो और बाती भी हो उसे कोई दूसरा बुझा दे तो इसका यह अर्थ नहीं कि वह दूसरी बार जल नही सकता। कोई भी दूसरा मनुष्य उसे जला नहीं सकता ? इस प्रकार जब तक आतमा का अस्तित्व है मनुष्य का नाश नहीं होता। जिस प्रकार दीपक बुझने के उपरान्त भी जल उठता है, ठीक इसी प्रकार मनुष्य के उपरान्त जन्म लेता है। जब तक दीपक में तेल-बात्ती है, कई बार जलेगा और कई बार बुझेगा। इस प्रकार "मनुष्य की आतमा का जब तक अस्तित्व है, वह बार-बार जन्म लेगा तथा बार-बार मरेगा।"

जीवन के अन्तिम क्षणों में वह कुछ अधिक बीमार हो गये। कटरा से उनके शिष्य उन्हें देखने पैंथल आये, तो इनकी यह दशा देख कर उनसे रहा नहीं गया। वे उन्हें पालकी में कटरा ले गये। कटरा के रघुनाथ मन्दिर में उनके रहने का प्रबन्ध किया। कटरा आये उन्हें कुछ ही दिन हुए थे कि फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष त्र्योदशी संम्वत् 2020 को उन्होंने अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर दिया।

अन्त में स्वामी जी के कुछ अनुयायियों ने रघुनाथ मन्दिर कटरा में ही उनके शरीर को समाधि दे दी। पैंथल के लोगों ने उनके अवशेषों को चिनार के वृक्ष तले रख कर उनकी समाधि स्थापित कर दी। महापुरुषों के अनुयायियों के बीच यह झगड़े अतीत से होते आये हैं। अब स्वामी जी के स्मारक कटरा, तथा ज्ञानकोट में स्थापित हैं। पैंथल में उनके शिष्य हर वर्ष उनका परिनिर्वाण दिवस एक यज्ञ और भण्डारे के रूप में मनाते हैं।

स्वामी जी का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था मोहक था। पांच फुट तीन इंच लम्बे, रंग गोरा, चेहरा लम्बा, मस्तिष्क चौड़ा, आंखों में एक विलक्षण आकर्षण था। वह अक्सर धोती और बन्द गले का कुर्ता पहनते। चेहरे पर एक

सतत मृदुस्मित छाया रहता । शरीर कोमल था । सिर पर कनटोप, पांव में खड़ाऊं पहनते थे । वृद्धावस्था में छड़ी का सहारा लेते रहे ।

वे सादा भोजन करते । मूंग की दाल, चपाती एक कटोरी चावल यही इनका भोजन था । सर्दियों में मक्की की रोटी के साथ सरसों का साग खाते थे । मस्तगढ़ की एक शिष्या के शब्दों में—"भोजन में खीर, औ'रिया, दही बड़ा तथा काशी फल की खटाई पसन्द करते थे । इनके शिष्य इन्हें ऋतुओं में होने वाले फल तरकारियां भेजते । आवश्यकतानुसार रखते, बाकी बच्चों में बांट देते । स्वामी जी थाली में खाना नहीं खाते थे । फर्श या पत्थर पर अन्न बिखेर देते और फिर उसे खाते ।

स्वामी जी चौपड़ खेलने के बड़े शौकीन थे । गर्मियों में चिनार वृक्ष के नीचे बैठकर कुशल खिलाड़ियों के साथ चौंपड़ की वाजी लगाते । कभी-कभी तुरुप भी खेलते थे । उनके पास एक पुराना ग्रामोफोन था सायंकाल बच्चे उनकी कुटिया में आ जाते, उन्हें बदल-बदल कर रिकार्ड सुनाते । गांव में आयोजित होने वाले मेलों में भी शामिल होते । रामलीला देखते और कलाकारों को प्रोत्साहित भी करते ।

स्वामी जी को बच्चों से बहुत प्यार था । वह प्रतिदिन बच्चों में फल मिठाइयां बांटते । कन्याओं को चूड़ियां खरीद कर देते । बालकों को अपनी कुटिया में खेलने की अनुमति देते । जो बालक बीमारी के कारण उनकी कुटिया में न आ पाता. उसका स्वास्थ्य जानने उसके घर पहुंच जाते ।

वे गांव के किसी भी पर्व या त्यौहार में शामिल होते थे । होली के अवसर पर वह बच्चों में रंग और पिचकारियां बांटते । लोहड़ी के त्यौहार पर बच्चों की छोटी-छोटी टोलियां लोहड़ी मांगने आतीं, स्वामी जी उनका नृत्य देखते गीत सुनते उनकी प्रशंसा भी करते । रात्रि में लोहड़ी को अर्घ्य देते समय सारे गांव के लोगों को बुलाते । मकर संक्रान्ति के दिन गांव में कुश्तियों का आयोजन होता था । स्वामी जी की ओर से आर्थिक सहायता दी जाती थी । नवरात्रों में वह कन्यापूजन करते थे । जन्माष्टमी, गोपालाष्टमी, गोवर्धन पूजा तथा विजय दशमी के दिन वह बच्चों में मिठाइयां और फल बांटते थे ।

स्वामी जी ने जन कल्याण के लिये कई महा यज्ञों का आयोजन किया था । यज्ञ में वे सभी को एक ही पंक्ति में बैठाकर खाना खिलाते थे ।

स्वामी जी को पशु-पक्षियों से भी विशेष लगाव था। गांव की गायें तथा बैलों को घास खरीद कर खिलाते थे। उनके लिये नमक की टुकड़ी बाजार के चौराहे पर रखवाते थे। उनकी कुटिया में रखा तोता सबको रामराम' कहता। चिड़ियों को चुग्गा डालते। गांव के तालाब में उन्होंने कश्मीर से बत्तखें मंगवा कर रखी थीं। उन्हें तालाब में तैरते देख बहुत प्रसन्न होते।

स्वामी जी के चरित्र में लोक सेवा के क्षेत्र में सबसे आगे रहने की विशेषता थी। वह सबके दु:ख दर्द सुनते और उनका निवारण करने का यत्न करते। उनके पास जितना भी धन आता, वह जनकल्याण में लगा देते। गरीबों के तो वह मसीहा थे। उन्होंने कई कन्याओं का कन्यादान करवाया। कपड़े बांटे घर बनवाने के लिए गुप्त रूप से आर्थिक सहायता की। उनके ही यत्नों द्वारा पैंथल में नल लगाये गये। इन्हीं की आर्थिक सहायता से पैथल बाजार पक्का हुआ। नालियों को पक्का किया गया। बावलियों और रास्तों को पक्का करवाया। गरीबों और साधुओं को कम्बल बांटे, भूखों को खाना दिया। पढ़े-लिखों और बेरोजगारों को काम दिलवाया।

स्वामी जी का आयुर्वेद से विशेष लगाव था। वह असाध्य रोगों की चिकित्सा करते थे। चिकित्सा के क्षेत्र में उन का एक विशेष स्थान था, मस्तिष्क रोग, आंत रोग, उदर रोग तथा गठिया के वह सफल विशेषज्ञ थे। उन्होंने गठिया के कई रोगी ठीक किये। सांप-बिच्छू के जहर के प्रभाव को वह बड़ी सरलतापूर्वक रोक लेते थे। सर्प का काटा कोई भी, किसी भी अवस्था में क्यों न हो, एक बार उनकी कुटिया में पहुंच जाता, तो निरोग होकर प्रसन्नतापूर्वक घर जाता था। वह मन्त्र चिकित्सा के भी जानकार थे। कई रोगियों को उन्होंने मन्त्र चिकित्सा द्वारा ठीक किया था। आंखों के लिए एक विशेष प्रकार का अंजन तैयार करते थे। ग्रीष्म ऋतु में वह पैंथल गांव के बच्चों को अपनी कुटिया में बुलाकर उनकी आंखों में अंजन डालते।

स्वामी जी में एक विशेषता यह भी थी कि वह सर्व-धर्म प्रेमी और सदाचारी थे। वह सबको "लाल जी" कह कर सम्बोधित करते। जिस आसन पर मंत्री सेठ या साहूकार को बैठाते, उसी पर वह भिखारी को भी बैठाते। जितना ध्यान-पूर्वक एक उच्च अधिकारी की बात सुनते, उतना ही वह गरीब की बात सुनते थे। वह न ही किसी के बहुत निकट थे और न ही दूर। गांव के लोग उन्हें अपना मानते थे वह सारे गांव को अपना समझते थे। वह सब के थे, और सब उनके थे।

स्वामी जी त्याग की प्रतिमूर्ति थे। राजगुरू होते हुए भी उन्होंने साधु-सन्त और फकीरों का जीवन भोगा। राज परिवार उनके लिये राजसी वैभव

का सारा सामान जुटाता रहता था, परन्तु वह ऐश्वर्य से दूर रहते थे। उनके लाख मना करने पर भी राजा अमर सिंह ने उनके लिये रूई के विशेष गद्दे बनवा कर ज्ञानकोट भेजे, तो उन्होंने उनको लौटा दिया। महाराजा प्रताप सिंह उन्हें एक बड़ी धनराशि देना चाहते थे, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं की। पुंछ का राजपरिवार भी स्वामी जी की सेवा में कीमती भेंटें भेजता था, परन्तु स्वामी जी वह भेंटे जरूरतमंद लोगों में बांट देते। कहा जाता है, कि स्व० महाराजा हरि सिंह ने चेतराम द्वारा कुटिया के मुआवज़े के रूप में जो पैंतालीस हजार रुपये की धनराशि भेजी थी, उन्होंने यह कहकर लौटा दी की वह स्थान और कुटिया उनके पूर्वजों की है, फिर भी उस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। पैंथल गांव के पोस्टमास्टर का कहना है, कि स्वामी जी के नाम पर सैंकड़ों मनीआर्डर आते थे, जिनमें से अधिकतर वह लौटा देते थे।

स्वामी जी के श्रद्धालुओं में उद्योगपति, व्यापारी, साहूकार, मंत्री, वकील तथा प्रशासनिक अधिकारी भी थे। वे थैलियां भर कर स्वामी जी के चरणों में रखते, परन्तु स्वामी जी उन्हें बड़े प्यार से लौटा देते।

स्वामी जी बड़े ही हंसमुख स्वभाव के थे। कमल नयन सदोत्रा को बुलाकर उससे मसखरी तथा ठिठोलियां सुनकर जोर-जोर से हंसते थे। दीनू भाई पंत की हास्यरस प्रधान कवितायें सुनकर ठहाके लगाते। कई बार वह लोभी मनुष्यों पर व्यंग्य बाणों की वर्षा करते थे। उनके एक शिष्य जेष्ठानंद थे। वह बड़े मंहगे हकीम थे। वह साधु भेष में रहते थे। एक दिन उन्होंने ज्येष्ठानंद पर व्यंग्य करते हुए कहा—"ज्येष्ठानन्द जी यह जानते हैं, कि मुझे कौन-सा रोग है, वह मेरे रोग का उपचार भी जानते हैं, परन्तु यह मुझे औषधि इसलिये नहीं दे रहे, क्योंकि यह मुझ पैसे से नहीं मांग सकते" स्वामी जी मिथ्यावादियों की हंसी उड़ाते थे।

स्वामी जी का गांव के लोगों से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। वह सुख और दु:ख में लोगों के घर जाते। विवाह में बैठी लड़की की कलाई पर अपने हाथों से 'कलीरा' बांधते। बारात का स्वागत करते। वर-वधु को आशीर्वाद देते। स्वय उनके घर जाते। सम्बन्ध जोड़ने में सहयोग करते। सारा गांव उन्हें अपना मुखिया मानता था, उनकी बिना आज्ञा के कोई काम न करते थे।

स्वामी जी की मातृभाषा डोगरी थी। उन्हें डोगरी के साथ बड़ा स्नेह था। हिन्दी तथा संस्कृत के प्रकांड पंडित होने पर भी वह सब के साथ डोगरी में बातचीत करते थे। वह स्त्रियों तथा पुरुषों को पौराणिक तथा वैदिक कथाएं, डोगरी भाषा में सुनाते थे। वह छोटी-छोटी कविताओं की रचना डोगरी में कर

लेते थे। बाबा तुलसीदास के शब्दों में स्वामी जी ने डोगरी भाषा में जो पद लिखे उनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

"साधु वहीं अच्छे रहते हैं, जहां के लोग अज्ञानी होते हैं।" स्वामी जी ने दीनू भाई पंत की डोगरी रचनाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

स्वामी जी के शिष्यों का कहना है कि स्वामी जी एक आदर्श अध्यापक थे। विद्यार्थियों को वह मन लगाकर पढ़ाते थे। उनके शिक्षण का ढंग बड़ा ही बोध गम्य था। उनके शिष्य लज्जूराम शास्त्री का कहना है कि रघुवंश उन्होंने स्वामी जी से पढ़ा था। वह श्लोकों का अनुवाद व्यास शैली में करते थे। पद्यबद्ध रचनाओं का उच्चारण सस्वर करते। वह अपने विद्यार्थियों का ध्यान रखते थे। पैंथल के रुद्रमणि का कहना है कि रघुवंश पूरा पढ़ाने के लिए स्वामी जी उन को अपने साथ शेरगढ़ी से श्रीनगर ले गए थे। वह धारा प्रवाह संस्कृत बोलते। उनका उच्चारण स्पष्ट तथा सवोध होता था।

सन् 1945 ई० में आर्य समाज के नेता आनन्द स्वामी, स्वामी नित्यानंद जी की प्रसिद्धि सुनकर पैंथल गांव के प्राकृतिक वातावरण से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने स्वामी जी के साथ विचार-विमर्श करके आर्य समाज की ओर से एक गुरुकुल खोलने की योजना आर्य प्रतिनिधि सभा में प्रस्तुत की। स्वामी जी की अध्यक्षता में पैंथल में एक बड़ा समारोह भी हुआ, जिसमें स्वामी के अनुरोध पर गांव के लोगों ने एक हजार बीघे भूमि गुरुकुल के लिए अनुदान देना स्वीकार कर लिया। स्वामी जी ने अपनी ओर से आर्थिक सहायता देने की घोषणा की। सन् 1947 ई० में भारत के विभाजन के उपरांत यह योजना खटाई में पड़ गई। गांव में स्वामी जी के नाम पर "स्वामी नित्यानंद शिशु पाठशाला" ही एक ऐसी पाठशाला है, जिसमें स्वामी जी के सिद्धांतों पर शिक्षा दी जाती है। स्वामी जी जिस स्थान पर गुरुकुल खोलना चाहते थे, वहां अब महाराजा हरिसिंह ऐग्रीकल्चर महाविद्यालय खुल गया है।

अध्यापक देवराज सासन के शब्दों में—"स्वामी नित्यानंद जी प्रकांड विद्वान् और महापंडित थे।" एक बार बिल्लू के मन्दिर जम्मू में स्वामी जी ठहरे थे, उनसे मिलने के लिए कुछ विद्वान पण्डित आए। उनके पास ग्रंथ और अनुत्तर श्लोक थे। उन्होंने अपनी समस्या स्वामी जी के समक्ष रखी। स्वामी जी ने उन श्लोकों की व्याख्या करके जब उन्हें सुनाई, तो उन्होंने स्वामी जी के पांव पकड़ लिये। स्वामीं जी ने ग्रंथों का महत्त्व और उनका सार भी कश्मीरी पंडितों को समझाया। इस प्रकार बंगाल, उत्तरप्रदेश और दक्षिण भारत के अनेक विद्वान अपनी-अपनी शंकाएं लेकर उनके पास आये। उन्होंने सब की शंकाओं का समाधान किया।

स्वामी जी कभी-कभी रघुनाथ पाठशाला जम्मू भी आते थे। विद्यार्थियों से प्रश्न करते और उनका मार्ग दर्शन भी करते थे। वह विद्यार्थियों में भाषण करते और पढ़ाई में रूचि रखने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहित भी करते थे।

एक वार 'मुत्तल' का एक हरिजन परिवार पंथल के रास्ते नुमाईं जा रहा था। उस परिवार के एक सदस्य को पंथल से गुजरते हुए प्यास लगी। परिवार के एक सदस्य ने ब्राह्मण परिवार की एक स्त्री से पानी पिलाने को कहा। वह औरत उस परिवार को जानती थी। उसने बात सुनकर मुंह फेर लिया। स्वामी जी यह सब देख रहे थे। उन्होंने उस परिवार को अपनी कुटिया में बुलाया। पहले उन्हें खाने को गुड़ दिया, तब स्वयं अपने हाथों से पूरे परिवार को पानी पिलाया। गांव के मुखिया यह देखकर हैरान रह गये। वह धीरे-धीरे स्वामी जी के पास आए और कहा, "महाराज! जिन्हें आप ने अपने हाथों से पानी पिलाया है, वह हरिजन थे।" स्वामी जी ने गांव के लोगों को समझाया कि सभी मनुष्य एक ईश्वर की सन्तान है। उन्होंने हरिजनों और ब्राह्मणों में कभी भी भेदभाव नहीं रखा। सब को एक समान समझा।

यह सत्य है कि, स्वामी जी का जन्म एक हिन्दू परिवार में हुआ था। यह भी सत्य है कि उन्होंने हिन्दू धर्म के ग्रंथों का गूढ़ अध्ययन किया था। इसमें भी कोई सन्देह नहीं, कि वह हिन्दू पद्धति को अपनाते थे, और यह भी सत्य है कि वह सभी धर्मों का आदर-सम्मान करते थे। सन् 1947 ई० में जब मुस्लिम परिवार गांव से भाग कर पहाड़ों की ओर चले गये। उस समय स्वामी जी ने उनकी सुरक्षा तथा भोजन का प्रबन्ध स्वयं किया था। स्वामी जी का सन्देश मिलते ही वह पहाड़ों से नीचे आ गए। उन्हें स्वामी जी पर पूरा विश्वास था। परन्तु उनके इस विश्वास को धन्वन्तर सिंह नामक एक पथभ्रष्ट युवक ने भंग किया, जिस का दुःख स्वामी जी को उम्र भर रहा। स्वामी जी के मन में मनुष्य जाति के प्रति एक जैसा प्यार था।

स्वामी जी की साहित्य गतिविधियों में बहुत रुचि थी। जब वह जम्मू में रहते थे तो वह नगर की साहित्यिक संस्थाओं में शामिल होते थे। हिन्दी साहित्य मंडल जम्मू की स्थापना होने पर उसके आजीवन सदस्य बन गए और मंडल को आर्थिक सहायता भी प्रदान करते रहे।

"स्वामी जी के चरित्र की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि वह सब के साथ समान व्यवहार करते थे। वह न तो किसी का पक्षपात करते और न ही किसी का विरोध करते। वह तटस्थ रहते थे। महाराजा प्रताप सिंह के दरबारियों में जो दो गुट थे, वे चाहते थे कि स्वामी जी उनमें शामिल हो जाएं।

स्वामी जी न तो किसी गुट का विरोध किया और न ही किसी को अनावश्यक समर्थन दिया। रानी चाड़क का गुट स्वामी जी को कुंवर जगदेवसिंह का समर्थन और राजा अमरसिंह का गुट हरिसिंह को समर्थन करने के लिए उन पर दवाव डालता था। स्वामी जी ने किसी भी गुट को समर्थन नहीं दिया। हरिसिंह तथा जगदेव सिंह दोनों स्वामी जी का आशीर्वाद पाने उन की कुटिया में आते थे, और वह दोनों को एक समान आशीर्वाद देते थे। मास्टर छज्जूराम पलासर के शब्दों में -"जब राजा अमरसिंह बीमार हुए तो उन्होंने स्वामी जी को बुलाया। स्वामी जी अमर महल पहुंचे, तो राजा अमरसिंह ने हरिसिंह का हाथ स्वामी जी के हाथ में देते हुए कहा- "महाराज! मेरे मरणोपरांत इसका ध्यान आप रखेंगे।" प्रत्युत्तर में स्वामी जी ने कहा—"राजन! आप का बेटा बड़ा नीतिज्ञ है। आप उस की चिन्ता न करें। महाराजा हरिसिंह ने जब शासन सम्भाला तो उन्होंने स्वामी जी से महलों में ही रह कर उन का मार्ग दर्शन करने की विनती की। स्वामी जी नहीं माने, उनका कहना था साधु का स्थान महलों में नहीं वन में होता है। इसलिए मैं किसी जंगली गांव में ही रहूंगा। स्वामी जी हरिसिंह तथा जगदेवसिंह दोनों से एक जैसा व्यवहार करते थे, परन्तु हरिसिंह के सलाहकारों को यह शंका थी, कि स्वामी जी का झुकाव महारानी चाड़क की ओर अधिक है। उन्होंने महाराजा हरिसिंह को स्वामी जी का लेखा देखने की सलाह दी। महाराजा हरिसिंह ने महाराजा प्रतापसिंह का निजी लेखा मगवा लिया। महाराजा हरिसिंह और उनके दरबारी यह देखकर चकित रह गए कि स्वामी जी राजगुरु होते हुए भी महाराजा प्रतापसिंह से एक रुपया प्रतिमाह ही स्वीकार करते थे। हरिसिंह ने स्वामी जी को पैन्शन लगाने की बात कही, तो उन्होंने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। उनका कहना था कि साधु को पैसे से क्या काम।

स्वामी जी ललित कलाओं के बड़े प्रशंसक थे। वह कलाकारों का बड़ा आदर-सम्मान करते थे। भूतपूर्व सांसद धर्मचन्द प्रशांत के शब्दों में—"एक बार छुनियां नामक एक चित्रकार दीपावली के शुभ पर्व पर महाराजा प्रताप सिंह और स्वामी जी का चित्र बनाकर लाया। उसने यह चित्र महाराजा को भेंट किया। महाराजा ने चित्र देखा। कलाकार ने चित्र में महाराजा तथा स्वामी जी को अलग-अलग कुर्सियों पर बराबर बैठे दिखाया था। चित्र देखकर महाराजा कलाकार पर बहुत नाराज़ हुए। कहने लगे—"तुम ने यह क्या किया? मेरा स्थान इनके चरणों में था, तुमने इनके बराबर बैठाकर यह क्या किया। स्वामी जी ने कलाकार को रोक लिया। उन्होंने उस की कला की प्रशंसा की और उसे इनाम दिलवाया। वह कलाकारों को प्रोत्साहित करते रहते थे। वह संगीत कला के विशेष पारखी थे। वाद्य यन्त्रों के प्रयोग का भी उन्हें ज्ञान

था। शिवराम बड़याल उनकी कुटिया में बैठकर जब संगीत की धुन छेड़ता तो वह आत्मविभोर हो उठते। स्थापत्य कला, मूर्तिकला तथा काव्य कला के पारखी थे।

वे अपने युग के एक विशिष्ट प्रतिनिधि थे। उन्होंने योग मार्ग को एक नई दिशा, नये आयाम दिए। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर जन-साधारण के लिए "योग का सीधा मार्ग" नाम की पुस्तक लिखी और हजारों की संख्या में लोगों को मुफ्त बांटी।

उन्होंने इस पुस्तक में सिद्धासन तथा पद्मासन की उपलब्धियों पर विशेष प्रकाश डाला है। उन्होंने सिद्धासन को योगियों के लिए इसलिये उपयुक्त माना कि इसके द्वारा काम की चेष्टा में कमी आती है। पद्मासन इन्होंने जनसाधारण के लिए उपयोगी बताया, क्योंकि इसके द्वारा कई शारीरिक रोगों को दूर किया जा सकता है।

स्वामी जी ने अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि शब्दों की परिभाषाएं इस में वर्णित की हैं। यम आदि नियमों का उल्लेख भी किया है। प्राणायाम्, प्रात्याहार, धारणा समाधि आदि की व्याख्या में उन्होंने समास शैली का प्रयोग किया है। स्वामी जी ने यह बात अपनी पुस्तक में स्पष्ट की है, कि योग साधना के साथ कई अन्य सिद्धियां स्वयं प्राप्त होती हैं, कि इन सिद्धियों द्वारा कोई आर्थिक लाभ नहीं लेना चाहिए। ऐसा करने से योग साधना में विघ्न पड़ता है। स्वामी जी के शब्दों में—"सिद्धियों में फंसने से आगे का मार्ग बन्द हो जाएगा।"

स्वामी जी ने योग द्वारा रोग निवारण का उपाय सुझाया है। उन्होंने योग को गृहस्थियों के लिए भी उपयोगी बतलाया है। योग का किसी भी धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। उन के अनुसार मुसलमान तथा ईसाई भी योग की दीक्षा ले सकते हैं।

स्वामी जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है, कि—उन्होंने योग साधना दो सन्यासियों को जिनमें एक वानप्रस्थी और दूसरा ब्रह्मचारी को सिखाया था। स्वामी जी के पास योग साधना की दीक्षा जिन दूसरे व्यक्तियों ने ली, उनमें हरिभगत और धीरेन्द्र ब्रह्मचारी का नाम भी लिया जाता है, धीरेन्द्र ब्रह्मचारी ने सन् 1950 ई० से पैंथल स्वामी जी की कुटिया में कई बार आया। धीरेन्द्र ब्रह्मचारी ने राष्ट्रीय मंच पर आने से पहले स्वामी जी को विश्वास दिलाया था कि वह योग साधना का उपयोग जन कल्याणार्थ करेगा।

स्वामी जी अपनी योग शक्ति के प्रदर्शन करने के पक्ष में नहीं थे। वह यह भी नहीं चाहते थे कि लोग उन की जय-जयकार करें। अपनी पुस्तक

'योग का सरल मार्ग' में लिखा है—'अधिक लोगों के साथ होने तथा सम्मान होने से हानि होती है।' इस लिए वह कोलाहल से दूर पहाड़ी गांव को ही अधिक मान्यता देते थे। वह योग शक्ति प्रदर्शन करने के पक्ष में नहीं थे, फिर भी कुछ लोगों ने उनके चमत्कारों की चर्चा की है। डोगरी के प्रसिद्ध साहित्यकार ओ० पी० शर्मा 'सारथी' का कहना है—"मैंने स्वामी जी का बहुत नाम सुना था। एक दिन मैं एक सैनिक मित्र संग स्वामी जी के दर्शनार्थ पैंथल गया। मन में विचार आ रहा था, कि आज मैं स्वामी जी से कोई चमत्कार दिखाने का निवेदन करूंगा। जब मैं उनके निकट बैठा, तो मेरे मुंह से एक भी शब्द न निकल सका। स्वामी जी मेरे भाव समझ गए। उन्होंने मुझे बाहर से छोटे छोटे कंकड़ उठा लाने को कहा। मैंने कंकड़ इकट्ठे कर उनके सम्मुख ढेर लगा दिया। स्वामी जी ने सारे कंकड़ एक लाल कपड़े में बांध कर एक छिक्के के नीचे रख दिये। कुछ समय वार्तालाप के उपरान्त जब हम लौटने लगे तो उन्होंने मुझे उस कपड़े को उठा लाने को कहा जिसमें कंकड़ बांधे थे। मैं उसे ले आया। उनके कहने पर कपड़ा खोला, तो उसमें कच्चे (सब्ज) बादाम थे। उन्होंने वही बादाम हमें प्रसाद के रूप में दिये। डाक्टर गंगादत्त विनोद का कहना है, उन्होंने स्वामी जी को हवा में आसन लगाये बैंठे स्वयं अपनी आखों से देखा है। भूतपूर्व मंत्री श्री अमरनाथ शर्मा का कहना है, कि एक मुकद्दमें में स्वामी जी की गवाही लेनी थी। पैंथल जाते समय राह में स्वामी जी से भेंट हो गई। रास्ते में हमने स्वामी जी के विषय में जो चर्चा की थी, उसे स्वामी जी ने अपने मुख से सुना कर सबको हैरान कर दिया। सहायक निदेशक महेंद्र खजूरिया का कहना है—वह अपनी पत्नी के साथ जब पैंथल पहुंचे तो स्वामी जी ने पहले से ही अपने चेले को बता दिया था, कि महेन्द्र दोपहर को पहुंच रहा है। उसके खाने की व्यवस्था करो। महेन्द्र ने स्वामी जी के आदेश पर वहीं खाना खाया। पैंथल के ही एक वृद्ध का कहना है—"वह प्रति दिन रात को स्वामी जी के पांव दबाने कुटिया में जाता था। एक दिन देर हो गई। वह रात को 12 बजे उनकी कुटिया में पहुंचा। कुटिया के द्वार बन्द थे। मैंने एक छेद द्वारा झांक कर भीतर देखा, मैं हैरान यह गया। स्वामी जी भूमि से एक मीटर ऊपर हवा में बैठे थे। उनके मस्तिष्क से प्रकाश की किरणें फूट रही थीं।" पैंथल की एक महिला का कहना है, "उन दिनों वह अविवाहित थी। स्वामी जी के लिये मैं दूध लेकर कुटिया में पहुंची कुटिया बन्द थी, मेरे धकेलने से द्वार खुले : मैंने अन्दर देखा स्वामी का रूप बदल चुका था। मैं डर कर मूर्छित हो गई। स्वामी जी स्वयं मुझे होश में लाये। पैंथल निवासी बंसीलाल का कहना है—सन् 1952 ई० में वह पैंथल से कटरा पढ़ने जा रहे थे। अभी ठीक से प्रकाश नहीं हुआ था। स्वामी जी की कुटिया में पहुंचा तो

देखा स्वामी जी ध्यान लगाये बैठे थे और उनकी गोद में एक भयंकर सर्प खेल रहा था। पैंथल निवासी देवराज मंगोत्रा का कहना है—"एक बार उन्होंने अपनी कुटिया का सब सामान बाहर निकाल कर जला डाला। द्वार बन्द किया, ताला लगाया। श्री निवास साहूकार को चाबी देकर कहा 'लाल जी! भीतर जाकर देखना कुछ बचा तो नहीं?

श्रीनिवास ने ताला खोलकर भीतर निरीक्षण करने के बाद स्वामी जी को बताया, कि अन्दर बिलकुल खाली है। उन्होंने कहा, 'साहूकार! तुमने शायद ठीक से नहीं देखा, अच्छी प्रकार देख लो।" "साहूकार ने फिर द्वार खोला और भीतर देखा, तो ढेर सारे बादाम थे। स्वामी जी ने वह बादाम सारे गांव में बांटे। कटरा निवासी गोबिन्द राम अध्यापक ने बताया—"एक दिन बोधराज अध्यापक का बेटा बहुत बीमार हो गया। डाक्टर बुलवाया गया। उसने बड़ा यत्न किया। अन्त में डाक्टर निराश होकर चला गया। रात्रि के दो बजे होंगे, मैं स्वामी जी के पास गया और प्रार्थना की कि एक बार चल कर देख लें। स्वामी जी ने बीमार लड़के के निकट आकर उसके सारे शरीर पर हाथ फेरा। लड़के ने आंखें खोल दीं। स्वामी जी ने बच्चे को दूध पिलाया। लड़का ठीक हो गया। इस समय वह लड़का एक इंजीनियर है और गांधी नगर जम्मू में रहता है। पैंथल निवासी कर्मचन्द धर्मभट्ट के शब्दों में—"महाराजा प्रताप सिंह का एक डाक्टर था। वह स्वामी जी पास अक्सर आता था। एक दिन उसने स्वामी जी से कहा "मेरी पत्नी से मिलने की बड़ी इच्छा हो रही है।" दूसरे दिन वह स्वामी जी के पास आया और कहा—"रात मुझे ऐसा लगा जैसे वह अपनी पत्नी के पास था और बताया, "मुझे लंदन से पत्नी का पत्र आया है, लिखा है, कि मैं आठ दिन पूर्व लंदन आया था, फिर शीघ्रही वापस क्यों चला आया? वह स्वामी जी के इस चमत्कार से बहुत प्रभावित हुआ तथा उनका अनुयायी बन गया। ऐसे और भी कई चमत्कारों का विवरण मिलता है।

स्वामी जी की शिष्य मण्डली में हर क्षेत्र के लोग शामिल थे। स्वामी जी महाराज प्रताप सिंह के गुरु थे। राजा अमर सिंह तथा पुंछ का राज परिवार भी उनका शिष्य था। महाराजा हरिसिंह भी उनका बड़ा आदर-सम्मान करते थे। स्वामी जी के लिये एक बार उन्होंने कहा था—"एक नंगा फकीर इन महलों में आया था और यहां से नंगा ही गया है।" महाराजा हरिसिंह के मंत्री न्यायाधीश करतार सिंह तथा उनका परिवार स्वामी जी का उपासक था। भूतपूर्व उपमन्त्री परमानन्द शर्मा उनके दर्शनों के लिये पैंथल उनकी कुटिया में आये थे। रियासी के रघुनाथ दास वकील, मोगा के डाक्टर

मथुरादास उनके शिष्य थे। वासुदेव सन्तन, पंडित शिवकुमार, पं० तेजभानु, परमानन्द साहूकार, वैद्य चुन्नी लाल तथा बांके विहारी भी उनके दर्शनों के लिये वहां जाते थे, जहां-जहां स्वामी जी ठहरते थे। पैंथल, उधमपुर, कटरा, रियासी और चढ़ैई के लोग उन्हें केवल अपना गुरु ही नहीं अपितु अपना सर्वस्व मानते थे। उधमपुर देवराज ज्योतिषी उनके कुल से थे। वह स्वामी जी के पक्के शिष्य भी थे।

प्रात: स्मरणीय स्वामी नित्यानन्द जी एक युग पुरुष थे। उन्होंने डुग्गर समाज को नव चेतना की संजीवनी दी।

अनु०—शिव दोबलिया □

प्रकाण्ड ज्योतिषी पंडित नाथ

□ डा० अशोक जेरथ

रावी के किनारे स्थित नगर बसोहली, का पहाड़ी कला, साहित्य एवं स्थापत्य के कारण विश्व प्रसिद्ध रहा है। बसोहली की लघु चित्र शैली ने तो संसार भर के कलाविदों को आश्चर्यचकित कर रखा हैं। यहीं पर पहाड़ी चित्र कला के अनेक कलाकारों ने अपने जौहर दिखाए और बाद में संरक्षण समाप्त हो जाने पर चम्बा, नूरपुर, गूलेर, तथा कांगड़ा आदि पहाड़ी राज्यों की ओर प्रस्थान कर गये। बसोहली का भव्य किला, जिसके भग्नाविशेष आज इसके स्वरूप को दर्शाते हैं, पाश्चात्य वास्तुकारों के आकर्षक का केन्द्र रहा है। पाश्चात्य पर्यटकों ने इस किले और इसके निचले धरातल पर बने महलों को पाश्चात्य 'कैसल' की संज्ञा से अभिहित किया था। इन महलों की भित्तियों को सुन्दर चित्रों से सज्जित किया गया था। समय के थपेड़ों से महल, इनकी कलात्मक भित्तियां और भव्य किला सभी कुछ समाप्त हो गया पर जो थोड़े लघु चित्र बचाए जा सके उन्हें कलाविदों न केवल सराहा अपितु अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ारों में उनका क्रय विक्रय चला। ये कला के वे आयाम थे जिनके बारे में कला जगत अनभिज्ञ नहीं है पर इनसे हट कर बसोहली का नगर साहित्यकारों. पंडितों, ज्योतिषियों एवं सांस्कृतिक प्रबुद्ध व्यक्तियों के लिए भी प्रसिद्ध रहा है अक्सर लोग जानते हैं कि पहाड़ी राज्यों में विलावरी पंचांग जन्तरी अथवा रोजनामचे को ही सबसे महत्वपूर्ण गिना जाता रहा है। यह पंचांग देश के स्वतन्त्र होने तक उत्तरी भारत में प्रसिद्ध और प्रचलित थी। किंतु बहुत कम लोग इस तथ्य से भिज्ञ हैं कि इस जन्तरी का मूल रचयिता कौन था ?

अठारहवीं सदी के मध्य में बसोहली का राज्य कला, साहित्य और संस्कृति के लिए सारे पर्वतीय राज्यों में प्रसिद्ध रहा है। तब इस राज्य के राजा थे राजा अमृतपाल। अमृतपाल धर्म भीरू, लोक परायण और कलाविद्

थे। जहां इनके राज्य में माणक और नैणसुख नामक श्रेष्ठ कलाकार प्रश्रय पा रहे थे वहीं पर ज्योतिष विद्या में निपुण और अपने समय के प्रबुद्ध विद्वान्, गणितज्ञ और अनेक ग्रन्थों के रचयिता 'पंडित नाथ' भी इनके दरबार की शोभा बने हुए थे। इसके बारे में यह मान्यता थी कि एक-एक पल, घड़ी और उम्र भर का लेखा-जोखा मात्र क्षणों बातों में बता देना इनके बायें हाथ का खेल था। जो फलादेश ये बताते थे यह कदापि गलत नहीं निकलता था। राजा अमृतपाल इस पर अति विश्वास करते थे, वस्तुत: पंडित नाथ राजा अमृतपाल के अति निकट दरबारी थे और समय-समय पर इनमें आपस में विनोद-वार्ता भी होती रहती थी। एक बार दरबार के दैनिक कार्य से मुक्त होकर राजा अमृतपाल पंडित नाथ के साथ वार्तालाप में लीन थे कि अचानक उन्होंने पंडित नाथ से प्रश्न किया कि उनकी (अमृतपाल की) मृत्यु कब होगी? पंडित नाथ इस अप्रत्याशित प्रश्न से चौंके पर तुरन्त ही अपने आपको सम्भाल विनीत भाव से उत्तर दिया कि राजा-महाराजा तो अपने इकबाल की बात पूछते हैं कि उनका इकबाल कहां तक बुलन्द होगा, कौन-कौन से प्रदेश पर उनका झण्डा लहराएगा और उनके राज्य की सीमायें कहां तक फैलेंगी। पर आपने यह प्रश्न पूछ कर आश्चर्य चकित कर दिया। मैं आपके गौरव की गाथा बताऊंगा। पर राजा अमृतपाल ने जिद ठान ली कि उन्हें उनके देहावसान का दिन बताया जाए। पंडित नाथ ने हिसाब लगाकर उन्हें बता दिया कि उक्त दिन से दो वर्ष बाद वे अपना शरीर पूर्व दिशा में स्थित एक महान तीर्थ स्थल पर नदी के किनारे त्यागेंगे। वह दिन, समय, घड़ी और पल भी बता दिया जिन्हें राजा ने लिख कर अपने पास रख लिया। फिर पंडित नाथ से बोले कि अब अपने बारे में बताएं तो पंडित नाथ ने दोनों हाथ जोड़ दिए कि उनसे यह सब न पूछा जाए क्योंकि वे इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहते पर राजा कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। अत: पडित नाथ को अपनी उम्र का हिसाब भी लगाना पड़ा और गणना करके राजा को बताया कि वह पंडित नाथ उस दिन से ठीक एक वर्ष बाद अपने घर बिलावर के प्राङ्गण में अपना शरीर छोड़ेंगे। राजा ने वह भी लिख कर अपने पास रख लिया। बात आई गई हो गई। राजा नित्य कर्मों में व्यस्त थे कि ठीक एक वर्ष बाद एक हरकारे ने आकर सूचना दी कि पंडित नाथ नहीं रहे तो राजा चौंके। हरकारे को बुलवा कर तफसील से सारी घटना पूछी तो उन्हें पता चला कि पंडित नाथ गाय को आंगन में बांधने के लिए ला रहे थे कि उनका पांव फिसल गया और सिर तुलसी के चौरे से टकराया। वे वहीं गिर कर समाप्त हो गए। राजा ने पंडित नाथ द्वारा लगाए गए ज्योतिष का कागज निकाल कर पढ़ा तो वे कांप उठे। वही वर्ष, वही दिन, वही घड़ी और वही पल था जिसके बारे में उन्होंने अपनी देह छोड़ने की बात की थी।



चित्र में बायें पं० नाथ और चित्रकार मानकू परस्पर वार्तालाप करते हुए
(बसोहली कलम की एक प्रतिलिपि)

जहां तक कि स्थान भी वही था। राजा ने हिसाब लगाया कि अब उनके पास मात्र एक वर्ष बाकी बचा है। उन्हें विश्वास हो गया था कि उनके बारे में लगाया गया हिसाब भी निश्चित तौर पर ठीक होगा : अतः उन्होंने अपना राजपाट त्याग दिया — अपने लड़के विजयपाल को राजगद्दी पर बैठाया और तीर्थयात्रा की ओर निकल पड़े। यह एक ऐतिहासिक घटना है कि ठीक उसी दिन उनकी मृत्यु काशी में गंगा के किनारे सूर्य को अर्घ्य देते हुई।

ऐसी चमत्कारिक अद्वितीय घटनाओं के भविष्य वक्ता पंडित नाथ का जन्म लगभग अठारहवीं शताब्दी में उनके पैतृक नगर विलावर में ही हुआ था। अपनी विद्वता और पांडित्य के बल पर बसोहली में राज्य से ही नहीं अपितु आस-पास की अनेक पहाड़ी रियासतों से अनेक लोग एवं शाही परिवारों के सदस्य अपने भविष्य के बारे में जानने के लिए इनके पास आने लगे थे जहां तक कि भड्डु राज्य के एक दरबारी, राणा किशनपाल, जोकि भड्डु के अंतर्गत जागीर माढ़ता के जागीरदार थे, के यहां एक लड़की का जन्म हुआ था जिसे, पुरानी प्रथा के मुताबिक, अफीम देकर जीवित गाड़ दिया गया पर पंडित नाथ के एक शिष्य ने जब उक्त कन्या की टीप बना कर उसके पिता राणा किशनपाल को कहा कि यह लड़की बड़ी सौभाग्यशाली होगी जिसकी गोद में जगत् प्रसिद्ध तीन शूरवीर और यशस्वी बेटे खेलेंगे और सबसे बड़ा बेटा छत्रपति सम्राट होगा तो राणा किशनपाल निराशा से बोले कि अब यह सब कुछ नहीं हो सकता उसे दफना दिया गया है पर जब उक्त ज्योतिषी के कहने पर, अनेक घण्टों के बाद, कन्या को जमीन में से निकाला गया तो वह अभी भी जीवित थी। यही बाद में महादेवी के नाम से जानी गई और जम्वाल राजपूत मियां किशोर सिंह की धर्मपत्नी और बाद में रानी बडवाल के नाम से प्रसिद्ध हुई। महादेवी ने तीन शूरवीर बेटों—गुलाब सिंह, ध्यानसिंह और सुचेत सिंह को जन्म दिया। आगे चलकर इन तीन भाइयों ने पंजाब राज्य की नींवें पुख्ता कीं और सबसे बड़े भाई गुलाब सिंह ने जम्मू-कश्मीर राज्य की नींव रखी और इसकी सीमायें इतनी सुदृढ़ कीं कि ऐसा कोई भी राज्य पहले कभी नहीं हुआ। मियां गुलाब सिंह से राजा गुलाब सिंह और बाद में महाराजा गुलाब सिंह कहलाए।

पंडित नाथ ने एक ऐसी जन्तरी (गणन-फलक) की रचना भी की जिसे बाद में विलावरी जन्तरी के नाम से जाना गया। वस्तुतः एक अद्भुत जन्तरी (गणनफलक) के आविष्कार का फल था जिसके माध्यम से कोई भी ज्योतिषी पंडित या साधारण गणितज्ञ कुछ ही घण्टों में वर्ष भर का पंचांग तैयार कर सकता था। इस अद्भुत जन्तरी का प्रतिरूप अभी भी पंडित नाथ के वंशजों के पास सुरक्षित है। आज भी इस स्थानीय पंचांग का उपयोग विलावर और बसोहली में होता है।

गणितज्ञ, ज्योतिषाचार्य के साथ-साथ पंडित नाथ एक प्रकांड विद्वान और अनेक ग्रन्थों के रचयिता भी थे। संस्कृत भाषा एवं साहित्य के साथ-साथ संस्कृत वांङमय के विद्वत अध्येता भी थे। इनके रचे हुए अनेक हस्तलिखित ग्रंथ अभी भी इनके वंशजों के पास सुरक्षित हैं। कुछ संस्कृत-ग्रन्थों की टीकाओं के साथ-साथ अनेक रचनाओं की पुर्नरचना और अनेक मौलिक पाण्डुलिपियों को रचने का श्रेय पंडित नाथ को जाता है। इनमें से अधिकतर रचनायें गणित और नजूम के साथ जुड़ी हैं।

इन पाण्डुलिपियों में 'लीलावती' खगोलशास्त्र और ज्योतिष के बीच समावेश करती हुई ग्रहों की चाल और उनका व्यक्ति पर प्रभाव दर्शाती है तो 'चमत्कार चिन्तामणि' के माध्यम से तंत्रविद्या और साधना का ज्ञान हमें होता है। 'कालमाधवी' समय और काल के परिवर्तन और काल के शून्य पर प्रभाव को लेकर लिखी गई मौलिक रचना है। इनके इलावा अनेक ऐसी पाण्डुलिपियां हैं जो पहले किसी अन्य रचनाकार द्वारा रचीं गई हैं पर बाद में पंडित नाथ ने इनकी पुनर्रचना की है। इन पाण्डुलिपियों में 'पाराशर स्मृति', 'नीतिशास्त्र', 'जैमिनी पुराण', 'होलिका पूर्णिमा', 'सांध्यगायत्री', 'मंत्रार्थ व्याख्या', 'भगवान दशस्कन्ध', 'याज्ञवल्क्य ब्रह्म', 'रक्षाबन्धन', 'लग्नगृह फलक' आदि मुख्य हैं। इनमें से अधिकतर पाण्डुलिपियां पंडित नाथ के अपने हाथों द्वारा लिखी गईं हैं पर ठीक सम्भाल न होने के कारण बहुत जर्जर हो चुकी हैं। ज्यादातर ये पाण्डुलिपियां धुमैली और धूसरित हो चुकी हैं अगर शीघ्र ही इन्हें सम्भाला नहीं गया तो काल के गर्त में गिर जायेंगी। मुझे पंडित नाथ की एक पाण्डुलिपि पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। जिसमें उन्होंने एक अनार में कितने दाने हैं गिनने का सुगम मार्ग सुझाया है। इसी प्रकार आकाश के एक निर्धारित भाग में स्थित तारों की गणना करने का फारमूला भी उनके पास था। अठारह्वीं सदी में ऐसे अद्‌भुत गणित की बात जब सामने आती है तो व्यक्ति आश्चर्य में पड़ जाता है।

पंडित नाथ की एक तस्वीर बसोहली के प्रमुख चित्रकार मानकू के साथ उपलब्ध है जिसमें पंडित नाथ को गुरु रूप दिया गया है। हो सकता है कि पंडित नाथ के निर्देशन में ही मानकू ने प्रमुख देवी-देवताओं के चित्रों का निर्माण किया हो।

इसके पहले कि पंडित नाथ द्वारा रचित पाण्डुलिपियां समाप्त हो जाएं पुस्तकालय अथवा संग्रहालय में इनके उचित संरक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिये। □

त्यागी बुद्ध सिंह

□ हरबंस सिंह आज़ाद

त्यागी बुद्ध सिंह जी को लोग स्नेह तथा आदर से त्यागमूर्ति महात्मा बुद्ध सिंह कह कर पुकारते थे। यह सचमुच एक महान आतमा एवं त्यागी पुरुष थे। महात्मा जी, प्रान्त के स्वतन्त्रता सेनानियों में माने जाते थे। आरम्भ से ही सांसारिक रिश्तों, सगे-सम्बन्धियों के मोह में बंध नहीं पाये। बचपन ही से इनमें महान् व्यक्ति होने के लक्षण मौजूद थे। इसी कारण बालक बुद्ध सिंह को 'निर्मोह राज' भी कहा जाता था। जीवन भर माया का लोभ इन्हें छू भी नहीं पाया। मार्च, 1948 ई० में जब शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की सरकार ने कई वर्षों से बन्द इनकी पेंशन दुबारा शुरू की तो महात्मा जी ने मात्र कुछ रुपये ही अपने पास रखे और शेष राशि को जरूरतमंदों में बांट दिया। उस समय की अवामी सरकार में मैं उनका निजी सहायक (पी० ए०) था।

त्यागी जी बड़े चंचल स्वभाव के बालक थे और पढ़ाई में भी आगे ही आगे रहते थे। इनका जन्म मई, 1884 में मीरपुर के एक हिन्दू परिवार में हुआ था। इनकी माता जी एक सिक्ख घराने से थीं।

बुद्ध सिंह जी अल्प आयु में ही नायब तहसीलदार हो गये थे तथा सात वर्ष तक इसी पद पर कार्य किया। 'व्यवस्था विभाग' में कमिश्नर के कार्यालय में यह नायब तहसीलदार थे इस बीच इन्हें रियासत का बाहरी भाग तथा घोर दुख, अभावों में जी रहे लोगों को देखने का अवसर मिला। अट्ठाईस वर्ष की आयु में यह तहसीलदार बन गये। उन दिनों त्यागी जी की गणना बड़े रोब-दाब वाले अधिकारियों में होती थी। इन्हें टैनिस खेलने का बड़ा शौक था (अमर सिंह क्लब) में टैनिस खेलने जाते थे। राज कुमार सर हरिसिंह रियासत के भावी महाराजा, इस खेल में अनेकशः रेफ्री हुआ करते। त्यागी जी तब अंग्रेजी पोशाक पहनते थे।

एक दिन अपने मन के झकझोरने के उपरांत इन्होंने अंग्रेज़ी पोशाक उतार फेंकी और खद्दर का जामा पहन लिया। यह परिवर्तन महात्मा गांधी जी के व्यक्तिगत विचार, तथा प्रचार के परिणामस्वरूप था। इनके मन में किसान मजदूर, अनाथ तथा निर्बलों के प्रति सहानुभूति जागृत हुई। इन्होंने महाराजा प्रताप सिंह जी को एक पत्र में प्रजा की अति बुरी हालत तथा चहुं ओर फैली निर्धनता के विषय में लिखा। यह पत्र एक दुखी आत्मा की ओर से...एक महान देशभक्त और उभरते हुए क्रांतिकारी की तरफ से वेदनापूर्ण लिखा गया पत्र था। फिर एक दिन खद्दरपोश तहसीलदार घास की कुटिया में रहने लग गया और तब से ही सत्य की तलाश में यह सिक्ख बन गये। माता की निरन्तर प्रेरणा रंग लाई। सिक्ख धर्म के अध्ययन में इनका रुझान बढ़ता चला गया और हर पल "......जे तोइ प्रेम खेलन का चाओ, सिर धर तली गली मोरी आओ। इत मारग पैर धरीजै, सिर दीजै काण न कीजै।" का उच्चारण करते रहते और इसी रास्तेपर चल पड़े। तहसीलदार बुद्ध सिंह जी एक दिन जेत्तो के मोर्चे का नज़ारा करने के लिए वहां जा पहुंचे और वापसी में अमृतसर आकर (गुरु दे बाग) के मोर्चे का नज़ारा भी देखा।

जम्मू लौट कर त्यागी जी ने काली पगड़ी बांधनी शुरू कर दी। तब यह एक साहसिक कार्य माना जाता था। गुरुद्वारों में जाकर भाषण भी करते। सन् 1928 ई० श्रीनगर में एक बहुत बड़ी अकाली कान्फ्रेंस हुई। जिसके सेक्रेटरी त्यागी जी थे। इस समागम का नज़ारा मैंने स्वयं भी अपने दादा जी डॉ० बचन सिंह के साथ देखा था। उस समय मैं लगभग पांच वर्ष का बालक रहा हूंगा।

सन् 1920 ई० मे त्यागी जी ने 'मलाज़मत की जिन्दगी' और 'फरियाद ए रय्यत' नामक दो पुस्तिकायें लिखीं और प्रकाशित की। श्रीनगर के 'हजूरी बाग' में अपने धड़ल्लेदार भाषणों में जनता में व्याप्त कंगाली और रिश्वत की चर्चा की लोग कह उठे... कोई फरिश्ता हमारी सहायता के लिए धरती पर उत्तर आया है।

राजकुमार हरिसिंह रियासती परिषद् के वरिष्ठ सदस्य की हैसियत से किश्तवाड़ के दौरे पर गये। इस दौरे का प्रबन्ध करने हेतु सरदार बुद्धसिंह को विशेष जिम्मेदारी दी गई परन्तु इन्होंने व्यर्थ ही लोगों को इकट्ठा करने से मना कर दिया। युवराज हरिसिंह के शिकार खेलने के दौरान मज़दूरों को दोगुणी मज़दूरी दिलवायी। बडे अधिकारी बहुत दुखी हुये। वे करते भी क्या? जब त्यागी बुद्ध सिंह मजदूरों के साथ था जो किसी अलग ही सांचे में ढला था। वे सभी बड़े अधिकारी दांत पीस कर रह गये।

त्यागी जी की कठिनाइयां भी अब बढ़ने लगी। एक के बाद दूसरा परिवर्तन होने लगा। तब उपायुक्त (डिप्टी कमिश्नर) बुद्ध सिंह जी ने सन् 1925 ई० में अपने पद पर से त्याग पत्र दे दिया और फकीरों का सा जीवन व्यतीत करने लगे इस घटना के बाद महाराजा श्री प्रताप सिंह जी के दिल में त्यागी जी के लिए बहुत आदर कायम रहा। उन्होंने त्यागी जी को अपना त्याग पत्र वापिस लेने के लिए काफी समझाया पर वह राजी नहीं हुये। एक दिन महाराजा साहब बटोत में ठहरे हुये थे। उन दिनों त्यागी जी बीमार चल रहे थे। महाराजा साहब ने प्रदेश के तहसीलदार और अपने सेक्रेटरी को सरदार जी का हाल-चाल पूछने के लिए सन्तासर भेजा और अपनी ओर से हर प्रकार की सेवा तथा सहायता का प्रस्ताव भी किया।

महाराजा सच्चे अर्थों में त्यागमूर्ति बन गए थे। कई वर्ष अन्न जल का त्याग किये रखा। मात्र दूध और फलाहार पर रहा करते। फिर यह तालाब तिल्लो में एक कुटिया में रहने लगे। गर्मियों में बारामूला के निकट एक कुटिया में निवास करते। अपने विद्यार्थी जीवन में मैं कई बार वहां उनसे मिलने जाता रहा।

त्यागी जी की प्रतिष्ठा दिन प्रति दिन बढ़ती गयी और उनकी कीर्ति रियासत के बाहर तक भी जा पहुंची। सिक्ख जाति में इनकी यशोगाथा इस बात से भी सिद्ध होती है कि 'पंजा साहब' के ऐतिहासिक गुरुद्वारे का शिलान्यास करने वाले पांच प्यारों में से एक यह भी थे और दूसरे सज्जन संत भाई रणवीर सिंह, संत बसाखा सिंह, और प्रिंसिपल जोध सिंह थे।

त्यागी जी तीन बार जम्मू डोगरा सभा प्रधान चुने गये। इनके भाषण देश भक्ति की भावना, गरीबों के उद्धार के लिए तथा रिश्वत के प्रति घृणा सम्बन्धी विचारों से ओत-प्रोत होते थे। उन्हीं दिनों अखबार 'रणवीर' के ऊपर लगाये गये प्रतिबन्ध के विरुद्ध इन्होंने महाराजा हरिसिंह जी को रोषपूर्ण पत्र लिखा जिसके प्रमुख शब्द थे—'क्या सरकार चलाने का यही ढंग है?'' उन्होंने (किसान की दास्तान) 'दर्दे दिल' 'गरीबों के दुख का इलाज' और (मेरी कराची यात्रा) जैसी कई छोटी-छोटी पुस्तिकायें लिखीं।

सन् 1934 ई० में वह बाकायदा कौमी राष्ट्रीय (आन्दोलन) तहरीक में शामिल हो गये। 1931 ई० में त्यागी जी फतहकदल के मुस्लिम रीडिंग रूम में रियासत के उभरते नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला जी से पहली बार मिले। इन्होंने शेख साहब को मशवरा दिया कि वह मुस्लिम कांफ्रेंस को राष्ट्रीय धारा पर चलायें ताकि बाकी समुदायों के लोग भी इसमें शामिल होकर स्वतन्त्रता के लिए एकजुट होकर संघर्ष कर सकें।

सन् 1934 ई० में त्यागी जी ने चनंहनी के राजा के द्वारा बढ़ते शोषण के विरुद्ध तहरीक शुरू की। उन्हीं दिनों यह मीरपुर पुन्छ सिक्ख चुनाव हलकों से रियासत की प्रजा परिषद्—के निर्विरोध सदस्य चुन लिए गये। प्रजा परिषद् में आकर त्यागी जी ने गरीबों और मज़दूरों का पक्ष बहुत दिलेरी से लिया। परन्तु 29 अक्तूबर 1936 ई० में घास चोरी कानून के विरुद्ध रोष प्रकट करते हुये यह कह कर त्यागपत्र दे दिया कि प्रजा प्ररिषद् मात्र एक खिलौना है। बात ठीक भी थी क्योंकि रियासत के बाशिन्दों का मात्र 3.80 भाग ही वोट देने का अधिकार रखता था। मतदाताओं की कुल 1,30,944 थी। बाद में 27 नवम्बर को मुस्लिम कांफ्रेंस ने भी प्रजा परिषद् से त्याग पत्र दे दिया।

सन् 1938 में राष्ट्रीय मांग की तहरीक में शेख साहब मौलाना सैयद और सादिक साहब जैसे नेताओं के साथ गिरफ्तार हुये। सज़ा होने के कारण अपने कुछ आवश्यक कागज़ात उन्होंने मुझे दे दिये। उनको रियासी की जेल में रखा गया। सहानुभूति स्वरूप वहां उन्होंने चौधरी गुलाम अब्बास के साथ रोज़े भी रखे।

इससे कुछ वर्ष पहले त्यागी जी को बाहु किले में भी कैद रखा गया था। शेख साहब इनका बहुत मान करते थे और इन्हें अपना रुहानी बाब आध्यात्मिक पिता कहा करते थे। त्यागी जी 22 से 24 अगस्त, 1940 को होने वाली (ऑल जम्मू-कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस की दूसरी बैठक में पुनः प्रधान निर्वाचित हुये।

'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन में इन्हें फिर कैद करके श्रीनगर सेन्ट्रल जेल में बन्द कर दिया गया जहां इन्होंने कैदियों से उचित व्यवहार करने के पक्ष में भूख हड़ताल की। बाद में त्यागी जी को मीरपुर जेल में स्थानांतरित कर दिया गया। रियासत पर कबायली हमलों के कारण उन्हें रिहा कर दिया गया। मैंने और कृष्णदेव सेठी तथा कुछ अन्य सज्जनों ने जेल के दरवाजे पर इनका स्वागत किया था।

आपातकालीन सरकार के समय में मैं सचिव था, जहां मैंने स्वयं उन्हें परिश्रम करते देखा था। मार्च, 1948 में त्यागी जी शेख साहब की पहली राष्ट्रीय सरकार के मंत्री बने। कुछ मतभेद होने के कारण यह सरकार से अलग हो गये और एक दिन मैं उनसे मिलने उनके कार्यालय पहुंचा तो कहने लगे—मैंने इस्तीफा दे दिया है। जम्मू के सरकारी निवास पर फोन से मेरी बात करवाओ .....अपने बेटे को उन्होंने फोन पर कहा—'मैं आज एक बजे के बाद वज़ीर नहीं रहूंगा। सरकारी कार अभी इसी वक्त गैराज में लौटा

दो और कोठी जल्दी से जल्दी खाली कर दो।' यह था उस समय की राज-नीतिक प्रतिष्ठाओं का बड़प्पन।

त्यागी जी का व्यक्तिगत चरित्र और राजनीतिक बहुत ऊंचा और पवित्र था। एक दिन उनके साथ बारामूला में (छटी पातशाही) के गुरुद्वारे में गया। भक्त परिक्रमा कर रहे थे। मैंने पुछ लिया (सन्त जी आप परिक्रमा नहीं करते) तो उन्होंने उत्तर दिया—ऐसा करना गुरु पर सब कुछ न्योछावर कर देने के समान है। मैं अभी पक्का सिक्ख नहीं बना हूं।

बात सन् 1942 ई० की है। शेख साहब कामराज इलाके के दौरे पर थे। इस दौरान मैंने शेर-ए-कश्मीर को अपने गांव खनियार आने के लिए अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने दिल्ली जाना था इसलिए सरदार बुद्ध सिंह जी को अपने घर वहां आने के लिए कहा —महात्मा जी तीन दिन मेरे घर ठहरे। यह केवल भुने चने और दूध का ही सेवन करते। अपने कपड़े भी खुद ही धोते। उनके ऊंचे स्वभाव की एक और घटना मुझे कभी नहीं भूलती। जिन दिनों मैं वजीर था तो जैसा कि मैं पहले बता चुका हूं कि मैं कभी उनका पी० ए० भी रह चुका था। मैं उन्हें मिलने गया तो उन्होंने अपने हाथ का पका भोजन मुझे खिलाया और जब मैं बर्तन साफ करने के लिए उठाने लगा तो उन्होंने मेरा बाजू थाम लिया और कहने लगे—'ऐसा नहीं हो सकता। आप मेरे अतिथि हैं और मंत्री भी। यह मेरा कर्तव्य है और खुशी का सबब भी।'

त्यागी जी 1952 से लेकर 1964 तक संसद सदस्य भी रहे और इस दौरान उन्होंने 45 भाषण दिये। उनके दो बेटे और एक बेटी थी। एक पुत्र कबायली हमले के समय मीरपुर में मारा गया और दूसरा सरदार अजीत सिंह अब एक बड़े पद से सेवानिवृत्त हो चुका है।

ये थीं त्यागी महात्मा त्यागमूर्ति की कुछ यादें। वह रियासत में इस शताब्दी के स्वतन्त्रता के लिए प्रथम और प्रमुख सेनानी—निष्काम, निर्वैर एव धार्मिक पक्षपात से परे रहने वाले नेता थे। दु:ख है कि ऐसे महा पुरुष का कोई भी सरकारी या गैर सरकारी स्मारक आज तक निर्मित नहीं हो सका।

अनु०—रमा शर्मा □

अल्लाह रक्खा 'सागर'

□ मुहम्मद यूसुफ टेंग

दिनांक = 1 मार्च, 1983
स्थान = लियाकत रोड, रावलपिंडी; पाकिस्तान ।

मैं इस्लामाबाद में इस्लामी युनिवर्सिटी, नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ पाकिस्तान, पाकिस्तान साइंस फाऊंडेशन और अदारा-ए-अदबेयात-पाकिस्तान का भ्रमण करने के बाद थका-हारा जब अपने मेज़बान ख्वाजा अब्दुल समद वानी, संपादक, साप्ताहिक "कशीर" के कार्यालय पहुंचा तो उन्होंने अपनी विशिष्ट मुस्कान के साथ कुर्सी से उठकर मेरा स्वागत किया। परन्तु उनकी इस परिचित पारम्परिक तथा स्वाभाविक मुस्कान से मुझे लगा जैसे गुलाब के दो ताज़ा फूल खिल उठे हों। उन्होंने बताया—"सागर साहब ने अपनी प्रकृति और स्वभाव के विपरीत आपसे भेंट की अनुमति दे दी है, चलिये, वे आप ही की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

वानी साहब की इस मुस्कान की पहचान मुझे अब हुई थी। हुआ यों कि जब मैं पाकिस्तान गया था, वहां हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन के कई नेता अपनी आंखों में अपनी फूलों भरी धरती के सपने संजोये और मन में अनेक घावों की बहार लिये मिट्टी की चादर के नीचे सो चुके थे। केवल दो-तीन नाम ही शेष थे, जिनको इस लुटे हुये काफिले की निशानी के रूप में अब भी याद किया जाता था। सरदार गौहर रहमान, शेख अब्दुल हमीद वकील तथा अल्लाह रक्खा "सागर" इनमें से पहले दो उन हज़ारों प्रतिनिधियों में सम्मि-लित थे जिन्हें जून 1931 में खानकाह मुअल्लाह की उस जन-सभा में जम्मू-कश्मीर के मुसलमानों के प्रतिनिधित्व के लिये चुना गया था। और जिसके औपचारिक समापन पर अब्दुल कादिर के भाषण ने वह चिंगारियां बिखेरी थीं कि जिसके धमाके 13 जुलाई, 1931 के शहीदों के हृदयों की धड़कन

बनकर गूंजे तथा जिनकी प्रतिध्वनि आज भी वातावरण में पाई जाती है। शायर के कहे अनुसार—

फूल बाकी नहीं, खुश्बू का सफर ज़ारी है।

परन्तु यह दोनों विभूतियां उन दिनों इस प्रकार अदृश्य हो चुकी थीं कि यह शे'र याद आ जाता था—

हम सा भी कोई गुमनाम ज़माने में न होगा,
गुम हो वो नगीं, जिस पै खुदे नाम हमारा।

इस प्रभाव का प्रमाण वह भाषण था जो उनके सहयोगी तथा अग्रणी शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने बहुत पहले "मुजाहिद मंज़िल" में दिया था जिसमें उन्होंने कहा था—

"ग्यारह नुमांइदों में से अब सिर्फ मैं इस इस सराये-फानी में बाकी रह गया हूं। इन्शा-अल्लाह! मैं ही वतन की आज़ादी की बशारत लेकर जाऊंगा और उन पाक रूहों को सुनाऊंगा।"

परन्तु अल्लाह रक्खा "सागर" अब भी एक धधकते अंगारे की भांति मेरे मस्तिष्क में धधक रहे थे। कश्मीर के स्वतन्त्रता आन्दोलन में मौलाना मुहम्मद सईद मसूदी के पश्चात् वे सब से अधिक कठिन तथा उनसे भी अधिक कंट्रोवर्शियल (विवादास्पद) पात्र हैं। आयु में वे मौलाना से छोटे तथा राजनीति के क्षेत्र में भी उनसे जूनियर हैं। परन्तु इन दोनों में ऐसे सांझे गुण हैं, जिनके कारण इनकी याद एकसाथ आ जाती है। दोनों अच्छे वक्ता तथा उच्चकोटि के लेखक भी हैं। दोनों उर्दू भाषा के माने हुए पत्रकार हैं और अपने-अपने दलों के प्रतिनिधि रह चुके हैं। यद्यपि शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह के कुछ प्रारम्भिक किन्तु प्रभावशाली भाषण जो मौलाना मसूदी की लेखनी से निकले हैं। इसी प्रकार चौधरी गुलाम अब्बास के बहुत से भाषण अल्लाह रक्खा "सागर" के लिखे हुये हैं। यहां तक कि शेख मुहम्मद अब्दुल्ला का विचार था कि चौधरी साहब की अपनी लिखी हुई आप-बीती "कशमकश" वास्तव में सागर के ही बाग की फसल है। मैंने स्वय जब सागर के लिखे हुए कुछ लेखों को "कशमकश" की लिखित के साथ मिलाया तो उसकी शैली का रग-ढंग, सागर के शब्दों का चुनाव तथा उनका प्रयोग देखकर मुझे यह बात पर्याप्त सार्थक और सटीक दिखी। भले ही सागर तथा अब्बास के बहुत से परिचितों के विचार इससे विपरीत हैं। उनका विचार है कि "कशमकश" में जो सरल-सीधी, एकरूपता किन्तु निष्पक्ष शैली देखा में आती है, वह अब्बास के व्यक्तित्व का ही रंग है। यह पुस्तक यदि सागर ने लिखी होती तो इसमें उनकी

दिमागी उथल-पुथल का रूप अवश्य नज़र आता। यह अमर बेल जैसी पेंचदार अवश्य होती। कुछ भी हो, मौलाना मसूदी तथा सागर, दोनों इकबाल के सौदाई हैं। यह दोनों समय के अनुरूप अपनी मज़ेदार बातों में उर्दू शे'रों का प्रयोग करते हैं। सन् 1983 ई० में जब मैं पाकिस्तान पहुंचा तो सागर साहब राजनीति छोड़कर अपने ही हाल में मस्त थे, अपने में डूबे रहते बहुत कम लोगों से मिलते थे। सीमा के इस पार से आने वाले बहुत से लोगों को वे निराश ही लौटा चुके थे। मैंने वानी साहब से प्रार्थना की कि वे सागर के साथ मेरी भेंट का प्रबन्ध कर दें। वे मेरा लिहाज करके सौहार्द वश मान तो गये परन्तु लगता था जैसे वे केवल औपचारिकता निभाने के ही इच्छुक हैं। वानी साहब ने सीमा पार से आने वालों के लिये अपना घर "कश्मीर मुस्लिम होटल" में परिवर्तित कर दिया था। अब सहसा इस दीवार में छेद हो चुका था। वानी साहब के लिये जैसे यह कोई अनहोनी बात हो गई थी।

हम शीघ्र ही चल पड़े। सागर साहब का घर सड़क के उस पार बस कुछ ही दूर था। हम वहां पहुंचे तो वानी साहब ने उन्हें सलाम किया मैंने मोटे शीशों वाली ऐनक लगाये एक लम्बे तथा इकहरे शरीर के व्यक्ति को देखा। सर पर कराकुल्ली टोपी और शेरवानी में सजा व्यक्तित्व। मुख पर एक विचित्र, किन्तु प्रभावशाली रौब सागर साहब के बेटे वहां कागज़ का व्यापार करते हैं। कोठी के बाहर एक दुकान पर कागज़ों के कुछ गट्ठर दिखाई दिये। जब भी सागर साहब का मन कोठी में उकता जाता तो वे दुकान पर आकर बैठ जाते हैं परन्तु व्यापार के झमेले में कभी नहीं पड़ते। वानी ने मेरा परिचय करवाया तो सागर साहब उठकर कहने लगे, "चलो अन्दर चलते हैं। वहीं बातचीत होगी।"

दुकान के साथ ही एक छोटी सी गली थी। उन्होंने आंगन के एक ओर भीतर से बैठक का द्वार खोला। बढ़िया फर्नीचर से सजी बैठक। मैं अपने स्वभाव के अनुसार सब से आरामदायक कुर्सी पर बैठ गया। सागर साहब ने स्वयं ही बातचीत आरम्भ की। कहने लगे, "मेरी देखने की शक्ति कम हो गई है। बहुत इलाज करवाया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। इसीलिये मित्रों से कम मिलता हूं। न जाने क्यों आपका नाम सुनकर मिलने की इच्छा हो गई।"

मैं बिना सोचे-समझे उतावले में मूर्खता कर बैठा। "महोदय, इसका श्रेय तो मुझे ही मिलना चाहिये।" इससे पूर्व कि सागर साहब कुछ कहें, मैं बोल पड़ा—

जज्बा-ए-दिल जो सलामत है तो इन्शा-अल्लाह,
कच्चे धागे में चले आयेंगे सरकार बन्धे।

"वास्तव में मेरी ललक इतनी उतावली थी कि आप भी इसके घेरे में आ गये।" सागर साहब के माथे की तनी हुई लकीरें ढीली पड़ गईं तथा मुख शांत हो गया। एक हलकी-सी मुस्कान, जैसे घने बादलों से बाहर आने को व्याकुल हो रही थी। परन्तु वानी साहब कुछ घबरा गये। कहने, "टेंग साहब आपके बहुत प्रशंसक हैं। आपके लिखे लेख इन्हें बहुत पसन्द हैं।" सागर बोले, "हमारे लेख क्या हैं? यह तो इनकी मेहरबानी हैं कि यह मेरे प्रति अच्छे विचार रखते हैं। मैंने लिखना-पढ़ना सब छोड़ दिया है। यही चाहता हूं कि लोग मुझे भूल जायें।"

फिर मैंने कहा, "सागर साहब, आपको कभी जम्मू की याद आती है? यहां कैसा लगता है तब सागर रोमांचित हो आये?" जैसे बेबसी में बोले।

वहीं लगी है जो नाजुक मकाम थे दिल के।

लम्बी आह भरकर कहने लगे, "हम जम्मू से आये नहीं निकाले गये हैं। और इसलिये गुम हो चुके स्वर्ग में फिर से लौट जाने के लिये आदम तथा उसकी सन्तान ने इतने उत्पात मचा रखे हैं।"

मैं मन ही मन प्रसन्न हो रहा था। जैसे मैंने उनके कवच का भेद पा लिया हो। अब बचकर कहां जायेंगे।

मैंने पूछा, "देश के बंटवारे के समय आप कहां थे?"

"मैं कठुआ जेल में बन्दी था।"

"तो पाकिस्तान कैसे पहुंचे।"

सागर साहब बोले—"उन्हीं दिनों जेल में समाचार पहुंचा कि प्रधानमंत्री यहां आ रहे हैं। जेल में कोलाहल-सा मच गया। मेरे कमरे...कमरा क्या था, एक अन्धेरी कोठरी थी, में विशेष रूप से सफाई होने लगी।

मैंने जेलर को **पुकार कर कहा**—"तुम अपना भविष्य चमकाने के लिये कुछ भी करो परन्तु मैं शेख अब्दुल्ला से मिलना ही नहीं चाहता। और यदि तुमने मुझे विवश किया तो मैं अपनी जान दे दूंगा।"

जेलर ने मुझे समझाने का बहुत प्रयत्न किया। मैं परेशान होकर बोला—"मुझे कुछ हो गया तो इसके उत्तरदायी तुम होंगे। मेरा खून तुम्हारे माथे ही लगेगा। शेख साहब तुम्हें पुरस्कार देने के बदले तेरी जान ले लेंगे।"

"शेख साहब आये परन्तु मैं अपनी कोठरी में ही द्वार बन्द किये पड़ा रहा। हम दोनों का टकराव न हुआ।"

"शेख साहब को टालने के पीछे क्या कोई मानसिक डर था ?" मैंने प्रश्न किया।

सागर साहब कहने लगे, "शेख साहब के साथ यदि भेंट हो जाती तो हमारी कहासुनी अवश्य हो जानी थी। और मैं इस कहा-सुनी से पिंड छुड़ाना चाहता था। अन्ततः कुछ समय उपरान्त हमें सुचेतगढ़ के रास्ते पाकिस्तान भेज दिया गया।"

मैंने उन्हें फिर कुरेदा, "क्या आपने जम्मू जाने का विचार छोड़ दिया है ?"

सागर साहब की मुस्कान और अधिक खिल गई। कहने लगे, "जम्मू ही क्यों, श्रीनगर भी हमारी झोली में होगा। मेरे पीरो-मुर्शिद ने यूं ही नहीं फरमाया—

आ मिलेंगे सीना-ए-चाकाने चमन से, सीना-ए-चाक।"

अब सागर साहब और अधिक नरम हो चुके थे तथा वार्तालाप में पहल कर रहे थे। इतनी देर में चाय आ गई। चाय के दौरान वार्तालाप ने नया मोड़ ले लिया।

"युसुफ साहब, मैं भी आपकी भांति ही कश्मीर की मिट्टी का जाया हूं। मेरी जन्म-भूमि बीज-बिहाड़ा है तथा हमारी जात बट्ट है।"

मैंने उन्हें टोका—"आपके प्यार का भेद अब खुला है। मैं भी इसी कुल का हूं। हमारी रगों में बह रहे सांझे लहू ने ही हमारी भेंट को साकार किया है।"

सागर साहब ने जम्मू में अपने पूर्वजों की आन-बान का वर्णन यों किया—

"अल्लाह ने उनके व्यापार में अच्छी बढ़ोतरी की और फिर हम इतनी बड़ी सम्पत्ति के मालिक हो गये कि उर्दू बाज़ार[1] की बहुत सी दुकानों पर हमारी मलकीयत हो गयी।"

मुझे शरारत सूझी तथा मैं विनोदी स्वर में बोला—"इसीलिये आपका तखल्लुस इसी बगिया का फूल है ?"

---

1. उर्दू बाज़ार का नाम अब राजेन्द्र बाज़ार है और कभी यह दूसरे शहरों के उर्दू बाज़ारों की भांति जम्मू की शोभा था।

सागर साहब ने बुरा नहीं माना और कहने लगे, "हां, बाद की घटनायें कुछ यही सिद्ध करेंगी। क्योंकि सुना है।

हुस्न गम्ज़े की कशा-कश से छूटा मेरे बाद

"अब तो वहां के बाज़ार, बाज़ार ही रह गये हैं। बनवास तो केवल उर्दू को मिला है।" सागर साहब की बात में व्यंग्य था। मैं जैसे तिलमिला सा गया। परन्तु कुछ कह न सका। वे अपने तल्ख़ स्वर में कहते जा रहे थे—"इसी उर्दू बाज़ार में मुस्लिम कान्फ्रेंस का कार्यालय था और मेरे समाचार-पत्र "जावेद" का भी। वहां से समाचार-पत्र की फाइल तक लाने की मोहलत न मिली।"

सागर साहब उदास से दिखने लगे। मैंने बात का रुख पलटा—"सागर साहब! इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं कि आप शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के कट्टर विरोधियों में गिने जाते हैं परन्तु आप भी तो उनके नेतृत्व में बहुत समय तक कार्य करते रहे हैं। आखिर शेख साहब में ऐसा क्या प्रभाव था जो दूसरे नेताओं का दिया उनके सामने जल ही न सका?"

सागर साहब ने बिना किसी संकोच के उत्तर दिया—"शेख साहब के स्वर में बहुत आकर्षण था। जब वे इकबाल का कलाम सुनाते तो जनसभा पर एक जादू सा कर देते। यह बात दूसरी है कि जम्मू में हम लोग कश्मीर से पहले ही सक्रिय थे। परन्तु कश्मीर में इस अन्धेरे का अभाव अधिक अनुभव होता था।

मैंने पूछा—"जम्मू में इतनी अधिक घुटन क्यों न थी। जबकि एकतन्त्र पूरे राज्य में था?"

सागर साहब ने बताया—"एक तो जम्मू पंजाब से जुड़ा हुआ था। दूसरे वहां अंग्रेज़ी शासन होने के कारण हमारी तुलना में स्वतन्त्रता अधिक थी। स्वतन्त्रता की यह किरणें भले ही जम्मू तक मद्धम होकर पहुचती थीं परन्तु पहुचती तो थीं। भोर का सौन्दर्य आह्वान तो देता था—किन्तु पीर-पंचाल पार करने के लिये किरणों के एक बड़े रेले की आवश्यकता थी। एक बात और, कि जम्मू महाराजाओं की जन्म-भूमि था तथा वे यहां पहुंचकर स्वयं को अधिक सुरक्षित समझते थे। कुछ भी था, शेख साहब नई रोशनी के व्यक्ति थे। दिया तो अन्धेरे में ही रोशनी देता है। जहां रोशनी है, वहां दिया का क्या काम? कश्मीर के लोगों ने जब अपनी मातृ-भाषा में शेख साहब से अपनी स्वतन्त्रता तथा क्रांति की बात सुनी तो वे परवानों की भांति उनके आगे-पीछे मंडराने लगे।"

अब सागर साहब को मैंने उनके राजनीतिक जीवन के भंवर में से बाहर खींचने का प्रयास किया। क्योंकि देर हो रही थी और फिर सागर साहब भी घड़ी की ओर बार-बार देख रहे थे।

"आप मुस्लिम कान्फ्रेंस को नेशनल कान्फ्रेंस में परिवर्तन करते समय शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के साथ ही थे। इसके अतिरिक्त आपने 1939 ई० के पत्थर मस्जिद अधिवेशन में इस परिवर्तन के पक्ष में भाषण भी दिया था। फिर ऐसे कौन से कारण थे कि आप दल की रस्सियां तोड़ कर फिर से मुस्लिम कान्फ्रेंस में चले गये?"

सागर साहब जैसे कोई चट्टान ठेलने लग गये हों।

"वास्तव में शेख साहब का यह निर्णय उनकी कुछ राजनीतिक आवश्यकताओं का अंश था। इसके अतिरिक्त इसमें पं० प्रेमनाथ बजाज के प्रचारों के दांव-पेच का भी कुछ योगदान था। मुस्लिम कांफ्रेंस में जम्मू के जिन कार्यकर्ताओं तथा नेताओं का योगदान था, वे सम्पूर्ण उपमहाद्वीप की मुस्लिम राजनीति से जुड़े हुये थे। शेख साहब को इसमें आने वाले समय के लिये अपने नेतृत्व की अधिक चिन्ता थी। मुस्लिम कांफ्रेंस बने कई वर्ष की अवधि में जम्मू के दो नेता शेख अब्दुल हमीद तथा चौधरी गुलाम अब्बास इसके अध्यक्ष रह चुके थे।

यही नहीं, एक बार जब चौधरी साहब अध्यक्ष थे, तब शेख अब्दुल्ला उनके महासचिव थे—शेख साहब (अपने चुनाव क्षेत्र को नया रूप देना चाहते थे। इस पर प्रेमनाथ बजाज ने अपनी सूझ-बूझ से काम लेकर शेख को यह विश्वास दिलाया कि जम्मू-कश्मीर में यदि मुस्लिम कांफ्रेंस ही काम करती रही तो कश्मीर की परम्परा ही नहीं, अपितु इसका भविष्य भी खतरे से खाली नहीं रहेगा। शेख साहब जब भी किसी बात पर अड़ जाते तो उन्हें वहां से हटाना सम्भव न होता था। इसके अतिरिक्त यह भी सच था कि अपनी आयु की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में वे भिन्न-भिन्न सहयोगियों के प्रभाव में रहे तथा उन्हीं की बातों पर कार्य करते रहे। कभी यह मिर्ज़ायी थे, कभी बजाज, कभी साम्यवादी, जैसे कंवर मुहम्मद अशरफ तथा बी० पी० एल० बेदी, कभी जवाहरलाल नेहरू तो कभी मिर्ज़ा मुहम्मद अफज़ल बेग।"

सागर साहब यादों की लहरों पर दिशाहीन तैरते जा रहे थे। मैंने उन्हें थाम लिया।

"तो क्या आप पहले ही नेशनल कांफ्रेंस के पक्ष में थे?"

सागर साहब ने मुझे टोका—"केवल मैं ही नहीं, बख्शी गुलाम मुहम्मद

तथा मौलाना मुहम्मद सय्यद मसूदी भी मुस्लिम कांफ्रेंस का नाम बदलने के विरुद्ध थे। परन्तु कार्यकारिणी के सदस्यों में से जिसने उनका विरोध करने का साहस किया, वे थे मौलवी अब्दुल्ला वकील। और उनके समान विचार रखने वाले उनके जो नेशनल कांफ्रेंस खड़ी करने के पक्ष में इतनी दृढ़ दलीलें देते थे कि उनका तोड़ हर किसी के बस की बात नहीं थी।"

"यानि कौन-सी दलील?" मैंने पूछा तो सागर बोले—"उदाहरण के तौर पर यही कि मज़लूम केवल मुसलमान ही नहीं, दूसरी कौमें तथा जातियां भी हैं। जम्मू में महाराजा की बिरादरी के राजपूत निःसन्देह मज़े में हैं परन्तु बहुत से हिन्दू, विशेष रूप से निम्न वर्ग की जातियों की बुरी दशा है। इसके साथ यह युक्ति भी कि जब तक जातिवाद को लेकर आंदोलन चलेगा, तब तक हिन्दोस्तान के बहुत से लोगों का यही मत बना रहेगा कि महाराजा तथा लोगों का यह संघर्ष हिन्दू राज के विरुद्ध मुसलमानों का विद्रोह है। और इस प्रकार रियासत के लोग बहुत से लोगों की सहानुभूति के बिना अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। खैर, कार्यकारिणी में मौन रह कर भी बख्शी साहब तथा मसूदी ने मुझे उकसाया कि मैं शेख साहब के विरुद्ध डट जाऊं। वे मुझे समर्थन देंगे और मैंने ऐसा ही किया। मैंने शेख साहब को सुझाव दिया कि इतना बड़ा निर्णय लेने से पूर्व जिला एवं प्रांतीय समितियों के साथ विचार-विमर्श कर लेना चाहिए। शेख साहब जानते थे कि इस राह में कितने कांटे बिखरे हुए हैं। इसी लिये उन्होंने इस सुझाव को रद्द कर दिया। और फिर जब कार्यकारिणी में इस सुझाव के लिए मतदान हुआ तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बख्शी साहब तथा मसूदी साहब ने बिना किसी विरोध के शेख साहब के पक्ष में मतदान किया।

मैंने प्रश्न किया—"तो फिर आप मुस्लिम कांफ्रेंस में लौट क्यों आए?"

"यह एक लम्बी कहानी है"—सागर साहब बोले—"हमारा विचार था कि यह परिवर्तन केवल रियासत तक ही सीमित रहेगा। उस समय तो यह भी भली प्रकार तय हुआ था कि नेशनल कांफ्रेंस का कांग्रेस अथवा मुस्लिम लीग के साथ कोई वास्ता नहीं रहेगा। परन्तु बाद की घटनाओं ने बता दिया कि शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, पं० नेहरू से प्रभावित होकर कांग्रेस की ओर आकर्षित होते जा रहे थे। यह भी सच है कि जम्मू के नेताओं के प्रति उनकी व्यवहारिकता मात्र एक दिखावा था। शेख साहब ने संकेत दिया था अब्बास को नेशनल कांफ्रेंस का प्रधान बनाया जायेगा। परन्तु यह वादा कभी पूरा न हुआ।"

अभी उनकी बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि उनके बेटे ने किसी अतिथि के आने की सूचना दी। सागर साहब के मुख पर ढलते-उतरते रग देखकर अनुमान लगाना कठिन था कि आने वाला व्यक्ति उनके कितना निकट है। अब सब लोग बस उठने वाले थे। चलते-चलते मैंने पूछ लिया––

"शेख साहब जब 1946 में पाकिस्तान आए थे तो वे अब्बास साहब से बहुत अच्छी तरह मिले थे। आपसे भी भेंट हुई थी ?"

सागर साहब ने उत्तर दिया- "नहीं ! उनके आने पर उनकी शोभा-यात्रा इसी सड़क से गुजरी थी। मैं इसी मकान की ऊपरी छत पर खड़ा था। परन्तु मैंने अपनी पीठ खिड़की की ओर कर रखी थी। मैंने उन्हें देखा ही नहीं। इसके पश्चात स्वागत समारोह का मुझे निमन्त्रण-पत्र भी आया किन्तु मेरा मन न माना।" सागर साहब के मुख पर अनजाने भाव पुन: उभर आए थे।

हमने हाथ मिलाये और बाहर निकल आये। अब्दुल समद वानी साहब बोले—"आज तो कमाल ही हो गया। सागर साहब किसी से मिलते ही नहीं थे। आपके साथ यह भेंट......कितने वर्षों के बाद मैंने उन्हें पहली बार इस प्रकार बातें करते देखा है।

मुझे यह पंक्ति याद आई—

बन गया रकीब आखिर जो था राज़दां अपना।

O

खेद है कि इस रेखा-चित्र में आपको सागर के जीवन की पूर्ण जानकारी नहीं मिलेगी। वास्तव में उन्होंने अपने आस-पास एक बहुत ऊंची तथा रहस्य-मयी दीवार खड़ी कर ली है, जिसमें से उन्हें अपनी अन्तर्दृष्टि से पहचानना और समझना बहुत ही कठिन है। मेरी एक भेंट इस दीवार में छेद करने के लिए बहुत ही सूक्ष्म थी। फिर भी जब मैंने जम्मू तथा रावलपिंडी में उनके बहुत से परिचितों से बातचीत करके जांच-पड़ताल की तो पूरी जानकारी प्राप्त न हो सकी। हां, उनके बारे में लोगों के क्या विचार हैं, इतना पता अवश्य लगाया जा सका।

रावलपिंडी में एक सांझे मित्र का कहना है कि वे चौधरी अब्बास के Conscience keeper (अन्तरंग परामर्शदाता) थे तथा वे उन्हें एक कोचवान की भांति हांकते थे। यह दोनों मित्र जहां भी रहे, एक साथ ही रहे। अब्बास सादा प्रवृत्ति के सच्चे मनुष्य थे परन्तु सागर बहुत ही चतुर तथा नीतिकुशल थे। हर बात देख सुन कर और सोच-समझ कर

करते थे। 1968 ई० में जब अब्बास साहब का देहांत हुआ तो सागर का मूल व्यक्तित्व भी समाप्त हो गया। और उसके पश्चात वे राजनीति की तेज़ रोशनी से दूर हटकर गुमनामी की ओर सरक गये। अब तो उन्होंने लोक-जीवन से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया है।

एक और सज्जन ने बताया कि साग़र ने जम्मू-कश्मीर से आने वाले दूसरे विस्थापित नेताओं की भांति किसी भी पद की इच्छा नहीं की। नहीं तो वे कोई भी पद प्राप्त कर सकते थे।

जम्मू में उनकी जितनी सम्पत्ति थी, पाकिस्तान में उन्हें उसका अंशमात्र भी नहीं मिला। दूसरे लोगों ने तो—"पिदरम सुल्तान बूद" (मेरे पिता सुल्तान थे) के अनुसार बड़े-बड़े (दावे) प्रस्तुत करके अपनी सम्पत्ति बना ली। (सरदार मुहम्मद इब्राहिम खान कई हज़ार बीघा जमीन के मालिक बन गये हैं। मकान का विवरण इससे अलग है।) परन्तु चौधरी गुलाम अब्बास के पश्चात यदि किसी ने यह सब नहीं किया तो वे हैं सागर साहब! उल्लेखनीय है कि चौधरी अब्बास ने अपनी अंतिम सांस एक किराये के मकान में ली।

जम्मू में साग़र के परिचितों ने उनकी तुलना मौलाना मसूदी के स्थान पर स्वर्गवासी शमीम अहमद शमीम से की है। उनकी सोच के अनुसार साग़र की लेखनी तथा बातों से उसी प्रकार चिंगारियां झड़ती और दहकती हैं जैसे साहब की लेखनी तथा बातों से। दोनों की ज़बान कैंची की भांति तथा लेखनी तलवार की भांति चलती थीं। दोनों विनोदी प्रवृत्ति के थे तथा हाज़िर-जवाबी के गुण भी दोनों में विद्यमान थे। हां यह और बात है कि साग़र में धैर्य तथा सहनशीलता अधिक थी।

जिन दिनों मैंने सागर को देखा था, तब वे भले ही लाठी की तरह सीधी कद-काठी के थे। परन्तु यह अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं था कि वे सत्तर-बहत्तर की आयु के हो चुके हैं। अब तो वे अस्सी वर्ष के हैं। इस अवधि में कश्मीर के स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्राय: सभी शीर्षस्थ नेताओं का देहान्त हो चुका है। सीमा के इस पार मौलाना मुहम्मद मसूदी तथा सीमा के उस पार अल्लाह रक्खा सागर पुरानी महफिलों की अंतिम ज्योतियां हैं।

हलका किये बैठे रहो इस शम्मा को यारो,
कुछ रोशनी बाकी तो है हर चंद कि कम है।

यह बात अधिक उल्लेखनीय है कि दोनों अपने दलों के शीर्षस्थ नेता होने के साथ-साथ लेखक भी हैं। दोनों की स्मरण शक्ति आज भी ठीक है। दोनों के सोने के घड़े गहरे भेदों से भरे हैं। परन्तु दोनों अपनी स्मृतियों को कागज पर

उतारने से परहेज, करते हैं। यह इतिहास की भांति उनकी साधुओं सरीखी उन्मुक्तता है या अपने आपको छिपाये रखने की कायरता—इसका निर्णय करना कठिन है।

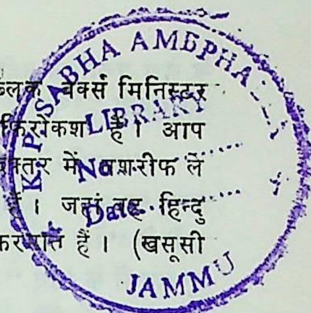


सागर को समझने के लिये उनके साप्ताहिक समाचार-पत्र "जावेद" का अध्ययन करना अति आवश्यक है। उनकी लेखन-शैली से उनके व्यक्तित्व की महक आती है। "जावेद" का प्रकाशन जम्मू से 19:9 ई० में आरम्भ हुआ और हिन्दुस्तान के विभाजन से कुछ समय पूर्व ही बन्द हो गया।

"जावेद" से पूर्व सागर 'पासवान" जम्मू और लाहौर के कुछ समाचार-पत्रों में कभी-कभी पत्र तथा लेख लिखते थे। परन्तु उनका वास्तविक कौशल इसी समाचार-पत्र में सामने आया। यह समाचार-पत्र उन्होंने जम्मू के प्रसिद्ध राजनीतिक कार्यकर्ता गिरधारी लाल आनन्द, जो कभी नेशनल कांफ्रेंस की कार्यकारिणी के सदस्य भी थे, के सहयोग से निकाला था। दोनों के बीच यह संधि हुई थी कि वे आपसी मतभेदों को एक ओर रख कर "जावेद" के लिये लिखते रहेंगे। परन्तु समाचार-पत्र देखने के पश्चात यों लगता है जैसे आनन्द साहब अस्सी वर्षीय दूल्हे की भांति "नयनसुख" ही बने रहे और सागर साहब नाचने के लिए सहमत नर्तकी की बांहों में बांहें डाले धूम मचाते रहे। "जावेद" भले ही मुस्लिम कान्फ्रेंस का प्रतिनिधि नहीं था फिर भी इस पर जिन्नाह साहब, अब्बास साहब तथा मुस्लिम लीगी राजनीति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। यह साप्ताहिक प्रचलित उर्दू समाचार-पत्रों के आकार में ही प्रकाशित होता रहा। परन्तु इसकी सामग्री एवं प्रकाशन अपने समय में सब से उत्तम तथा दर्शनीय थी। सागर के स्वभाव के रंगों की शोभा तथा निष्पक्ष फुल-झड़ियां देखने को मिलती थीं। सच बात तो यह है कि शमीम अहमद "शमीम" के "आईना" से पूर्व इस रंग-रूप का समाचार-पत्र "जावेद" ही था। और जिस दिये ने "आईना" को चिंगारी का रंग दिया, उसका प्रथम अनुभव "जावेद" के लिए लिखने वाले सागर को ही मिलता है। "जावेद" के कुछ अंकों का स्मरणीय उल्लेख इस प्रकार है।

25 जनवरी, 194· के 'जावेद" का अंक मेरे सामने है। उस समय महाराजा ने अवामी वज़ीरों की असामियों के लिए दो वज़ीर, गंगाराम और मिर्ज़ा मुहम्मद अफज़ल बेग की नियुक्ति की थी। "जावेद" ने खबर लिखी :—

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की मसरूफ़ियात



जम्मू-शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह साहिब इन दिनों पब्लिक वर्क्स मिनिस्टर (मिर्ज़ा मुहम्मद अफजल बेग) के सरकारी बंगला में फिरोकश हैं। आप बा-इन्तिज़ाम हर रोज़ दो बजे बाद दोपहर सरकारी दफ्तर में तशरीफ ले ज़ाते हैं और बरामदों और गुलाम गर्दिशों में घूमते रहते हैं। जहां वह हिन्दु ठेकेदारों और गैर-मुस्लिम मुलाज़मों के आदाब कबूल फरमाते हैं। (खसूसी नामानिगार)।"

मुझे यहां शमीम अहमद "शमीम" के "आईना" का एक समाचार याद हो आया। जो उसने 1964 में प्रकाशित किया था। समाचार-पत्र मेरे सामने है तो नहीं परन्तु उसका शीर्षक था—

"साबिक वज़ीरे-आजम की मसरूफियात" और उसके पश्चात् लिखा था कि बख्शी साहब आजकल अपने टेलिफोन पर अपने मन-पसन्द ठेकेदारों की अपने नमक-ख्वार अफसरों के पास सिफारिशें करते रहते हैं।"

"जावेद" के इसी अंक में उस समय के प्रधानमंत्री सर बी० एन० राव का रेखा-चित्र है। (स्मरणीय है कि साप्ताहिक "आईना" में शमीम साहब किसी व्यक्तित्व का शब्द-चित्र भी छापते थे)—केवल एक दृष्टांत—

"गोपाला स्वामी आयंगर इतने कड़वे थे कि उन्हें मुसलमानों ने थूक डाला। बेंगल नरसिंह राव इतने मीठे हैं कि उन्हें कश्मीरी पंडित निगल गए हैं। इस लिहाज़ से वे बिच्छू और वे बछड़े।"

"आईना" से पूर्व "जावेद" में भी पत्रों का स्तम्भ "हदीसे दीगरा" के शीर्षक से छपता था। 4 जनवरी, 1944 के "जावेद" में सम्पादक अपने पत्र भेजने वालों से यों सम्बोधित होते हैं—

दुआगोशी, वकासा लीसी......हमारे पास ऐसे मरासलात मौसूल होते हैं जिनमें मामूली एहलकारों से लेकर आह्ला हुक्काम हर एक के मुताबिक यूं लिखा जाता है :

"आली जनाब नायब तहसीलदार साहिब रामबन की खिदमत में इस्तदा है कि......" या "चौकी अफसर के हुस्ने इन्तज़ाम से राई और रियाया की बहुत खिदमत होती है।"

उक्त शैली अत्यन्त दास्ता-भरी सोच की उपज है। लोगों को भिक्षा नहीं, अधिकार मांगना चाहिये। लम्बी उम्र की दुआयें देना तो भिखमंगों और मीरासियों का काम है। मेहनत मज़दूरी कर के पेट पालने वालों का नहीं। हमें अफसोस है कि हम इस प्रकार के निकृष्ट तथा कटोरा लेकर मांगने वालों

के लेख प्रकाशित नहीं कर सकते । अच्छा यही रहेगा कि ऐसे गुलाम "जावेद" की बजाये "रणबीर" के साथ पत्र-व्यवहार करें ।

"रणबीर" लाला मुल्कराज सराफ के सम्पादन में प्रकाशित होने वाला जम्मू का प्रथम समाचार-पत्र था । अन्याय की बात यह है कि "जावेद" भी इसी के "प्रेम प्रेस" छापेखाने से प्रकाशित होता था और इस प्रकार की धृष्टताओं के लिए "जावेद" को इसके मुद्रक नाकों चने चबवाते थे ।

"जावेद" का हास्य-व्यंग्य स्तम्भ "जुर्रात" शीर्षक से प्रकाशित होता था तथा इसमें सागर अपने हंसमुख स्वभाव के शगूफे विखेरते थे । 4 जनवरी, 1944 के ही अंक में यह भी शामिल है—

"तरीक कोह वन में भी वही हीले हैं हरदोज़ी ।"

मिर्जा मुहम्मद अफज़ल बेग—(जो इन दिनों मिनिस्टर थे) भी मोटर में उसी ठुस्से से तशरीफ रखते हैं जिस तरह नवाब मिर्ज़ा जफर अली खां असद बैठते हैं । जहां तक हाकिमाना रौनक का ताल्लुक है अफज़ल बेग साहिब और पंडित रामचन्द काक (जो इन दिनों वज़ीर हज़ूर थे) की गर्दन के अस्तर खां में कोई वजह तमीज नहीं ।"

यहां यह शब्द "अस्तर खां" जिस स्पष्ट ढंग से प्रयोग हुआ था उसकी सराहना वही लोग कर सकते हैं जिनकी नज़रों के सामने मिर्ज़ा साहब तथा काक साहब की गर्दनों का दृश्य रहा होगा ।

12 अप्रैल, 1945 के "जुर्रात" में बेग साहब की चुटकलेबाज़ी का विवरण देते हुए प्रकट किया गया कि जब भी अच्छी बात की सराहना करने का अवसर मिलता है तो "जावेद" की जीभ थकती नहीं ।

"और तो और मिर्ज़ा जाफर अली खां ने भी असेम्बली में लतीफा पैदा किया है । नेशनल कांफ्रेंस ग्रुप के सेक्रेटरी मि० सादिक ने कहा कि हकूमत के कारोबार में हमारा हिस्सा नहीं । पं० अमरनाथ काक ने जवाब दिया, आप तो पचास की सदी पर कब्ज़ा जमाये बैठे हैं और हकूमत का निस्फ हिस्सा आपके कब्ज़े में है । (उनका इशारा वज़ारत में बेग साहिब की मौजूदगी की तरफ था) इस पर बेग साहिब खड़े हो गए और फीउलबद कहा—निस्फ ही नहीं बल्कि निस्फ बेहतर पर । (याद रहे कि निस्फ-बेहतर (Better half) अंग्रेज़ी में बीबी को कहते हैं ।)"

इसी अंक में एक स्तम्भ का शीर्षक गनी कश्मीरी के इस प्रसिद्ध शे'र को बनाया गया है : —

गनी रोज़े स्याहे पीर कनां रा तमाशा कुन,
कि नूर दीदा अश रोशन कुनद चश्म ज़ुलेखा रा ।

मुझे याद आया कि शमीम साहब ने भी "आईना" में एक समाचार का शीर्षक गालिब के शे'र को बनाया था—

> वफादारी में शेखो-ब्राह्मण की आजमायश है,
> जहां हम हैं वहां दारो-रसम की आजमायश है।

"जावेद" के कुछ अंकों में ख्वाजा गुलाम सय्यदन की लेखनी से निकले हुए लेख उनके हस्ताक्षरों सहित प्रकाशित होते थे। वे उन दिनों रियासत के शिक्षा विभाग के निदेशक थे। उनका एक लेख इस राजकीय शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ था—

"आ तुझ को बताऊं तकदीरे उम्मम क्या है?"

4 जनवरी के अंक में इस शीर्षक "ख्वाजा गुलाम सय्यदन वापस जाएंगे" सहित लिखा है :—

"मोह्तबर ज़राये से मालूम हुआ है कि ख्वाजा साहिब मई 1945 से पहले ही रियासत की मुलाज़मत से दस्त-बर्दार हो जायेंगे। अगरचे बा-खबर हलकों का ब्यान है कि कौंसल आपकी कारकर्दगी के पेशे-नज़र आपकी मयादे-मुलाज़मत में तौसीह मंजूर कर लेगी मगर ऐसे हालात पैदा किये गये हैं जिनकी मौजूदगी में आप काम नहीं कर सकते—(ख्सूसी नामानिगार)"

इसके पश्चात राज्य हिन्दू सभा, "जावेद" के अनुसार जिसका कार्यक्षेत्र पक्का डंगा से लेकर मुहल्ला भावड़ेयां (अब जैन बाजार) तक ही सीमित है, के निजी-पत्र) आफ़िशियल आर्गन ने लिखा है—

"यकीन किया जाता है कि मि० जिन्नाह ने भी कश्मीर से रुखसत होते वक्त सर वी० एन० राव को दबे इल्फाज़ में धमकी दी थी कि अगर मि० सय्यदन को वापिस लिया गया तो राव बज़ारत मुसलमानों की हमदर्दी से महरूम हो जायेगी।"

इस दावे की खिल्ली उड़ाते हुये "जावेद" ने लिखा है कि जिन्नाह साहब जैसे महान तथा माननीय व्यक्तित्व को इस फट्टे में टांग अड़ाने की आवश्यकता क्यों पड़ती? और इस प्रकार सोचना ही मूर्खता है।

"उनके नज़दीक तो ख्वाजा साहिब ने महकमा तालीम को पाकिस्तान बना डाला है। इस पाकिस्तान की हैयत तरकीबी क्या है? आइये शोबा-ए दरसो-तदरीस के पाकिस्तान पद नज़र डालें।

	कुल तादाद	हिन्दू	ण्स्लमान	मुसलमानों का तनासिब
प्रिंसिपल	4	3	1	25%
प्रोफेसर	27	23	4	1`%
लेक्चरर	57	35	22	38%
हैडमास्टर हाई स्कूल	30	21	9	30%
स्कूल मास्टर (ग्रेड 55-125)	489	314	175	34%

"जावेद" की फ़ाइलों का अध्ययन करने पर आज कुछ सच्ची तथा रोचक सच्चाइयों एवं घटनाओं का पता चलता है। उदाहरणतया—साहब के जाने के पश्चात् शिक्षा विभाग के नये निदेशक सम्बन्धी अटकलबाज़ी की गई है :—

"आजकल इस बात की बड़ी चर्चा है कि नया डायरेक्टर ऐजूकेशन कौन होगा ? खलीफा डॉ० अब्दुल हकीम साहिब एम० ए० पी० एच० डी० प्रिंसिपल अमरसिंह कालेल और डॉ० मुहम्मद अमीन तासीर उम्मीदवार हैं। चूंकि खलीफा पुश्तैनी बाशिन्दा-ए-रियासत हैं और पहले से ही मलाज़मत में हैं इसलिये उनकी तकरीर ज़्यादा मुमकिन है।"

स्मरणीय है कि खलीफा अब्दुल हकीम, कश्मीरी भाषा के प्रसिद्ध कवि तथा आलोचक स्वर्गीय अब्दुल अहमद आज़ाद के गांव "रांगर" के निवासी और आज़ाद के निकट-सम्बन्धी थे।

11 जनवरी, 1945 का एक समाचार है—

उर्दू बाज़ार से रंडियों का इखराज

जम्मू—10 जनवरी आज म्यूनिसिपल कमेटी के इजलास में उर्दू बाज़ार से रंडियों के इखराज का मुआमला पेश हुआ। मुतफिका तौर पर करार पाया कि म्युनिसिपल बाईलॉज़ की रू से कमेटी आंईदा उर्दू बाज़ार, मुहल्ला बाबा जीवन, रेज़ीडेंसी रोड में पेशा करने की ममानत करती है। ख्याल रहे कि मुख्तलिफ अदारे इस बात का बार-बार मुतालबा कर रहे थे। (खसूसी नामानिगार)।

25 दिसम्बर, 1944 के समाचार-पत्र में लिखा है—

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को अशरफ का सर्टीफिकेट

जम्मू—मशहूर इश्तराकी लीडर कंवर मुहम्मद अशरफ की जम्मू व कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस में वही पोज़ीशन है जो सर तेज बहादुर की महाराजा

कश्मीर के दरबार में। डॉ० साहिब ने Diarchy (जिसके तहत बेग साहिब वज़ीर बने थे) के मुतल्लक अपना तबसरा बम्बई के अखबार "कौमी जंग" में शाया किया। जिसका इक्तबास यूं है—

"नेशनल कान्फ्रेंस का 'नया कश्मीर' जैसा जम्हूरी और इन्कलाबी प्रोग्राम था मगर उसने महाराजा की Diarchy में शमूलियत करके अपनी लुटिया ही डुबो दी। इस वक्त भी वहां की असेम्बली (प्रजा सभा) के 75 मेंबरों में सिर्फ 33 चुने जा सकते हैं। और इनमें भी सिर्फ 10 नेशनल कान्फ्रेंसी हैं। प्रजा सभा में इस वक्त फौज और महाराजा का जाती बजट ज़ेरे-बहस नहीं लाया जा सकता। ज़ाहिर है ये नये मिनिस्टर महाराजा के नौकर और दुआ-गो ही हो सकते हैं। मगर नेशनल कांफ्रेंस ने इसमें शमूलियत कर ली। इस कारवाई से जागीरदारों की जीत हुई। इससे भी ज्यादा हैरानकुन बात है कि दोनों वज़ीरों का जगह-जगह इस्तकबाल हुआ और खुद शेख मुहम्मद अब्दुल्ला उनके दौरे में हमराह थे।"

इसके पश्चात् सागर की समीक्षा है—"डा० अशरफ हिन्दोस्तान के ज़हीन और मुखलस इश्तराकी लीडरों में से हैं और यह हकीकत भी शकोशुबह की है। और उन्हें सियासयात के असरारों-खफाया समझाने में अपनी तरफ से कोई तामिल नहीं किया। इन नाजुक ताल्लुकात के बावजूद उनका ये रवैया अख्तियार करना हैरानकुन है।"

"जुर्रात" स्तम्भ में एक शीर्षक लगाया है—

दसौंदा सिंह का मकामी अडीशन

फिर लिखा है—

"सरदार दसौंदा सिंह पंजाब के एक दिलचस्प वजीर थे। कहते हैं कि एक दफा लाहौर से गुजरांवाला तशरीफ ले गये। आठ दस मील के बाद मोटर बिगड़ गया। शौफर ने बहुत हाथ-पांव मारे लेकिन नुक्स दूर न हो सका। वो सरदार साहिब के आगे हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहा—हज़ूर मोटर बिगड़ गया है आगे जाने का नहीं। सरदार साहिब ने दो-चार मिनट सोचकर फरमाया तो वापिस ही ले चलो।"

उस समय सागर को क्या पता था कि दसौंदा सिंह जैसे चरित्र बार-बार जन्म लेते हैं और शीघ्र ही ईश्वर भला करे, स्व० सुगामी साहब के रूप में सरदार ·सौंदा सिंह Folk-Lore में अपना नाम एक कदम आगे बढ़कर दर्ज करवाने वाले थे। इसी समाचार-पत्र में सागर साहब को क्रोध आया है और वे अपने समाचार-पत्र का परिचय यों करवाते हैं—

"हमारी कतई राय है कि सहाफत का पेशा मुस्लमानों का पेशा है। जैसे ब्याज व्यापार हिन्दुओं का लेकिन इस हकीकत के बावजूद हिन्दोस्तान की सहाफत पर हिन्दुओं का कब्जा है।—"जावेद" वुसअते अशायत के लिहाज से हर मुक़ामी अखबार को ललकारने की पोज़ीशन में हैं। लेकिन आप दूसरे हिन्दू अखबारात की निसबत इश्तेहारात के मुआमले में इसे फिसड्डी पायेंगे।"

कभी-कभी "जावेद" के विज्ञापनों में भी सम्पादक के स्वभाव का अच्छा रंग दिखाई देता था। उन दिनों दूसरे विश्व युद्ध में जर्मनी की चारों ओर चर्चा थी। एक ओर रूस ने मुहाज खोल रखा था तो दूसरी ओर अमरीका आदि। "जावेद" ने अपने विज्ञापन का शीर्षक यों सजाया—

"हिन्दोस्तान का जर्मनी के खिलाफ तीसरा मुहाज़।

आज तक हज्जाम और दीगर मुअज़्ज़ीन जर्मनी के तैयार करदा उस्तरे इस्तेमाल करके खुश होते थे, लेकिन हिन्दोस्तान ने बिरको (Birco) रेज़र तैयार करके जर्मनी के दांत खट्टे कर दिये हैं। आप भी बिरको रेज़र खरीदिये।"

"जावेद" में "मिस्टर खुर्शीद हसन, सेक्रेटरी टु मिस्टर जिन्नाह" के शीर्षक से उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके थे। एक स्थान पर बेवेर्ली निकोल्स की प्रसिद्ध पुस्तक "Verdic on India" के एक हवाले का अनुवाद दर्ज है जिसे पढ़ कर अनुमान हो जाता है कि निकोलिस ने जिन्नाह को कितना सही समझा था :—

"बरेआज़म एशिया की अज़ीम शख्सीयत मुहम्मद अली जिन्नाह की उम्र सतासठ वर्ष है, वो दराज़ कद, लागर अंदाज और खुश-रूह इन्सान हैं। ज़ाहिरी शक्लो-सूरत से वो हस्पानिया के बाशिन्दे मालूम होते हैं। आइंदा चन्द साल के दौरान हिन्दोस्तान ही दुनिया का अहमतरीन मसला बनने वाला है और इस सिलसिले में मि० जिन्नाह का हिस्सा बहुत अहम होगा। वो सियासयात का रुख जिस सिमत चाहें फेर सकते हैं......कोई और मुसलमान लीडर अपने अन्दर यह अहलियत नहीं रखता। हिन्दुओं का यह हाल नहीं। अगर आज मि० गांधी सियासयात से दस्तकश हो जायें तो उनकी जगह जवाहर लाल नेहरू, राजगोपाल आचार्य, सरदार पटेल या कोई और अपनी कौम की क़ियादत कर सकता है।"

उन्हीं दिनों जिन्नाह साहब रियासत के (बहुत ही खून-खराबे तथा अफरा-तफरी के वातावरण में) दौरे पर आये "रणबीर" ने इस समाचार पर यह

उड़ता व्यंग्यात्मक शीर्षक सजाया :—

शहनशाहे पाकिस्तान का जम्मू में फीका इस्तकबाल !

फिर क्या था, सागर साहब तिलमिला उठे और "रणवीर" के नाम ऐसी-ऐसी......गालियों पर उतर आये थे।

"जावेद" में सर तेज बहादुर सप्रू की गुटनिरपेक्षता के चीथड़े भी उड़ाये गये हैं।

सागर साहब के विचार में सर तेज़ बहादुर सप्रू उर्दू के प्रति अपने स्नेह-प्यार तथा खुलेपन की आड़ में कश्मीर में एक 'खेल' खेल रहे थे। वे महाराजा के असल सलाहकार थे तथा वहां के हर अच्छे-बुरे का निर्णय किया करते थे। सागर बार-बार सर सप्रू को "गन्दुमनमाई" तथा "जौ-फरोशी" का वर्णन करता है और लिखता है कि कश्मीर के कानून की पुस्तक में गौ-हत्या की मनाही, सम्पत्ति का छीनना एवं असलाह रखने की स्वतन्त्रता जैसे कानून का उल्लेख सर सप्रू के हित-चिन्तन, समानता, सुलह-सफाई तथा न्याय प्रियता पर एक धब्बा है*

निस्सन्देह इस बात-चीत का स्वाद ऐसा है कि इसे समाप्त करने को मन नहीं करता, फिर भी हमारे पास एक सीमित समय है। "जावेद" एवं उसके साथ-साथ सागर के काम और स्वभाव को उजागर करने के लिये मुहम्मद अली जिन्नाह एवं प्रेमनाथ बजाज, सम्पादक "हमदर्द", के इससे सम्बन्धित दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना उपयुक्त नहीं होगा।

"जावेद" में "कायदे-आज़म का गरामीनामा" शीर्षक से एक पत्र प्रकाशित है—(जो वास्तव में अंग्रेज़ी का अनुवाद लगता है।)

"एक ऐसे वक्त में जबकि पेचीदा मसायल और कसरते मशागल ने मुझे बेहद मसरूफ रखा है। "जावेद" के मुतलिक तासरात ब्यान करना मुमकिन नहीं। ताहम मुझे इतना जाहिर करने में कोई दिक्कत नहीं कि मैं कभी-कभार 'जावेद' का एक-आध मज़मून देख लेता हूं और मुझे खुशी है कि अखबार उन मसायल पर जिनसे मुसलमान कौम दो-चार हैं, सुलझे हुए तरीके से बहस करता है। शायद यही वजह है कि आम और खास दोनों तबके पसद करते

---

* कानून की लौ में (1) गौ-हत्या की मनाही, (2) यदि कोई गैर-मुस्लिम इस्लाम अपनाता तो उसे अपनी सम्पत्ति से हाथ धोने पड़ते थे, (3) असलाह रखने का अधिकार केवल राजपूतों को ही था।

हैं और इसीलिये यह जम्मू का सबसे बा-रसूख और हरदिल अज़ीज़ अखबार है।

आपका मुखलिस
मुहम्मद अली जिन्नाह

23 दिसम्बर, 1944 ई०

यह पत्र "जावेद" के चार जनवरी, 1945 ई० के अंक में प्रकाशित हुआ। इसके कुछ ही महीनों पश्चात् जब "जावेद" को "सी" (c) सूची में रखा गया तो सागर विरोध करते हुये लिखता है—

जावेद मुद्दई है कि वो रियासती अखबारात में सबसे कशीरउल अशायत है।

बजाज साहब अपने चर्चित समाचार-पत्र "हमदर्द" के 29 मार्च, 1945 ई० के अंक की एक सम्पादकी में "जावेद" का पक्ष लेते हैं जिससे उस समय की पत्रकारिता के क्षेत्र में "जावेद" की साख का अनुमान हो जाता है—

"हमें जावेद की पालिसी से इत्तिफाक नहीं है लेकिन हम यह कह सकते हैं 'जावेद' रियासती प्रेस में एक मुमताज दर्जा रखता है। और मुस्लिम जराइद में चोटी का अखबार है। हमारे दिल में कोई शुबह नहीं कि यह अखबार रियासती मुसलमानों के जज्बात व ख्यालात की जिस निडरता और बहादुरी से तरजमानी करता है वो किसी दूसरे अखबार की हिम्मत दिखाई नहीं देती। इसकी बहादुरी में गैर जिम्मेदारी नहीं और इसके मज़ामीन मतीन और संजीदा होते हैं। ये अगर अफसोसनाक है कि जहां हकूमते कश्मीर ने लचर अखबारात को 'ए' (A) लिस्ट में रखा है। वहीं ऐसे बुलन्द पाया अखबार को 'सी' (c) लिस्ट में दर्ज कर दिया है।"

2 अप्रैल, 1945 ई० को "जावेद" में एक छोटा-सा समाचार है जो उस समय अति साधारण था परन्तु बाद मे हमारे लिये बराबर सिर-दर्द बना रहा। इसमें लिखा है कि पीढ़ा और बटोत के बीच में एक-एक पहाड़ी बर्फोबरान में फसना शुरू हो गई है।

बाद में यही स्थान "नाशरी नाला" बन गया और शायद 'जावेद' का यह समाचार उनकी प्रथम चुनौती था। 'जावेद' एक सचित्र साप्ताहिक था तथा उस समय की टेक्नॉलोजी के अनुसार इसमें फोटो-ब्लाक भी छपते थे। इसी कारण इसमें कुछ ऐसे व्यक्तियों के फोटो भी हैं जो और कहीं नज़र नहीं आते।

अंत में गुलाम रसूल "निशात" किश्तवाड़ी की एक कसीदानुमा कविता की कुछ पंक्तियां उद्धृत करना उचित होगा। जो उन्होंने चौधरी अब्बास तथा सागर के किश्तवाड़ आगमन पर लिखी थी। इसमें सागर का उल्लेख इस प्रकार है—

आ गये हैं हज़रते सागर भी आज,
रखते हैं सर पर जो खुद्दारी का ताज।

मादरे मिल्लत के बस गौहर हैं यह,
अपने गुलशन के गुले खुशतर हैं यह।

कसरे कौमी के ये वो मीनार हैं,
अपने फन में जो बहुत होशियार हैं।

मैं यह पंक्तियां लिख रहा हूं और मेरी आंखों के सामने अल्लाह रक्खा सागर का वह चेहरा उभर रहा है जिस पर किसी शूरवीर मुखड़े की सी लाली है। भले ही वह जानता है कि उसने युद्ध जीता तो नहीं परन्तु युद्ध भी तो एक कला है तथा उसने Art for arts sake (कला के लिये) युद्ध किया—डट कर लड़ा और खूब लड़ा। बाकी—

शिकस्तो-फतह नसीबों से है वले ऐ मीर......

मूल उर्दू से अनुवाद—रत्न कलसी

चित्रकार जगतराम छुनिया

संसारचन्द्र बड़ू

ज़रा मैदान के इस मेले में झांक कर देखें, शायद किसी परिचित से भेंट हो जाए। पर्व-मेलों का यही सब से बड़ा लाभ है। एक ओर कहीं गीतों की मधुर स्वर लहरियां गूंज रही हैं तो दूसरी ओर ढोलक की ऊंची थाप छिज के लिए आमंत्रित कर रही है। ऐसी जगहों पर कुछ लोग अचानक ही खो जाते हैं और कुछ भूले-बिसरे अनायास मिल भी जाते हैं। मेला नाम ही मिलन का है।

अरे......? हलवाई की दुकान पर भीड़ ! वह जिस भाव दे, कम दे, ज्यादा दे कोई पूछ-पड़ताल नहीं है। गरीब, जिन की अंटी में पैसा नहीं वे केवल देखने भर से सन्तुष्ट हैं। वह देखो ! बच्चे जलेबियों की चाशनी देख कर अपने मुंह की लार सम्भाल नहीं पा रहे हैं। औरतों की कतार एक-दूसरी की कन्नी पकड़े इधर से उधर चल रही है। गुब्बारे के लिए मचलता बच्चा। मां घुड़कती है 'जा पकड़ ले बापू को। दो औरतें मिलीं, छोटी ने पांव छुए और वृद्धा (हाल-चाल) पूछ रही है। है न मेला ! पक्का मेल। वो देखो बंदर ने बंदरिया का घाघरा खींच लिया और बंदरिया ने मुड़ कर उसे दबोच लिया। बच्चों ने ताली बजाई। पीछे की ओर देखो, कितनी भीड़ है। बच्चे तो बच्चे बड़े भी मस्ती में हैं। मेला तो भिखारियों का है, किसी ने चादर बिछाई है, कोई बर्तन में 'ठन-ठन' सिक्के बजा रहा है। सभी हाथ पसारे। कोई बैसाखियों से संकेत कर रहा है किसी ने ठूंठ जैसा बाजू आगे बढ़ाया हुआ है मानो मेला भीख मांगने का ही स्थान हो। पण्डित जी तिलक लगाकर चरणामृत देते जा रहे हैं। लो चौधरी जी तो अभी आए। साथ चल रहे असामी ने थैला उठा रखा है जिसमें बोतलें खनक रही हैं। खेल तो नहीं। यही तो मौज उड़ाने का दिन है। मैं सोच रहा था, मेले में मुझे जिस व्यक्ति से काम था शायद उससे मुलाकात हो जाए। तभी वे दिखाई दिये तो मैंने लपक कर कहा। "जी......जी इधर

तो देखिये, मैं हूं, मैं आप ही को ढूंढ रहा था। मुझे आप के दर्शनों की अभिलाषा थी। वर्ना इस भीड़ में घुसने की क्या तुक था। यही जगतराम छुनिया थे। लगभग छः फुट लम्बाई, रंग गेहुंआ। चेचक के दाग चेहरे के बांकपन का कुछ भी बिगाड़ नहीं पाए हैं। सुतवां नाक, बड़ी-बड़ी आंखें, पचहत्तर की उम्र में भी पूर्ण स्वस्थ. छड़ी की जरूरत नहीं। पहनावा खिलका-कुर्ता, तंग पायजामा डोगरी पुराने जूते, घुमावदार डोगरी पगड़ी, कानों में मोतियों वाली सोने की मुरकियां। इन का छोटा भाई नन्दू था। असली नाम था नन्द लाल। उस्ताद छुनिया उसे नन्दू कह कर पुकारते थे।

इनके पिता का नाम यदि मैं गलती नहीं कर हूं तो शिवराम था। आरम्भ में भड्डू किशनपुर के रहने वाले थे। यहां जम्मू में इनका मकान मुबारकमंडी के बाहर गुरुद्वारे के सामने बंद गली का आखिरी मकान है। देखो, मुस्करा रहे हैं कि मैं कैसे उनका हुलिया और पता ठिकाना बयान कर रहा हूं जैसे पुलिस को रिपोर्ट लिखवा रहा होऊं। गुरु जी माफ करना। आप कहीं जरूरी काम से तो नहीं आए थे ? इस मेले में अनायास ही सामना हो गया, गुस्ताखी माफ। हमने बहुत तेजी से डग भरे, सांस फूल गई—'आप बहुत तेज़ चलते हैं ? मैं इनकी पहचान आपसे करवाना चाहता था। मुझे भी लोग पूछते रहते हैं। लोग पूछते हैं कि शुरू में किसके पास चित्रकारी सीखने गया था मैं ? तो मैं कहूंगा कि इनके पास ही जाने का अवसर मिला था। इन्हें जम्मू के तमाम शिल्पकार उस्ताद कह कर मानते थे। कामगार फिरो फकीर मुहम्मद इनका प्रिय शिष्य रहा है। हो सकता है 'जानी' एवं 'इंदरू' भी इनके पास आते रहे हों। इनकी गणना उस समय के माने हुए उस्तादों में की जाती थी। जम्मू में अथवा आस-पास के मन्दिर या पर्यटन स्थलों पर भित्ति चित्र बने। ये कामगार लोग ही चित्र बनाया करते और धार्मिक जानकारी प्रस्तुत करने वाले चित्र बनाने में केवल उस्ताद छुनिया ही उनकी मदद कर सकते थे। उस वक्त इसके सिवाय दूसरा कोई ठौर न था—यह मात्र चित्रकार ही नहीं अपितु सुशिक्षित पंडित भी थे। ग्रन्थों का गहन अध्ययन किये हुए, मंत्रों-शास्त्रों के ज्ञाता थे।

दुनिया के बहुत सारे चित्रकारों के उस्तादों का किसी को पता नहीं। अन्यत्र झांक कर देखें तो स्कूल हैं, कालेज हैं, कई संस्थाएं हैं, कई स्टूडियो हैं परन्तु वहां जो प्रथा है यहां नहीं बन सकी। यहां तो धार्मिक प्रेरणा और अभ्यास ही बड़ी बात थी। सामूहिक अभ्यास शहंशाह अकबर के समय में आया जबकि सैंकड़ों कारीगर काम में लगे होते थे। फिर भी अपनी बपौती की कलम में अन्तर स्पष्ट है। मैं समझता हूं मुख्य कारण संस्कार होते हैं। मैं पुनर्जन्म में विश्वास रखता हूं नहीं तो कैसे कोई शुरू में ही बड़ा आदमी बन

जाता है तो कोई सारी उम्र झख मारता दीखता है। कोई पूर्वजन्म के शुभ कर्म हैं। संस्कार अपना रास्ता स्वयं प्रशस्त करते हैं संयोग बन जाते हैं और अवसर खोजने की जरूरत भी नहीं पड़ती।

महाराजा रणवीरसिंह के समय में (हरिचन्द) कांगड़ा से आए। कितने बड़े उस्ताद थे वे। पर थे बढ़ई। वे जम्मू में बहुत समय तक जैन बाजार की एक गली में रहे। इस समय में चित्रकला खूब समृद्ध हुई। कई जगहों पर भित्तिचित्र बने। मंदिरों में तो कोई जगह नहीं बची। हरिचन्द उस वक्त का माना हुआ चित्रकार था। उसके पास कई सुनार शिक्षार्थी बने। उनके बनाये चित्रों में राम पंचायत में श्री रामचन्द्र जी का चेहरा ऐसे दीखता है जैसे सचमुच परमपावन भगवान हों। आपके पास विद्या थी। वे मंत्र शास्त्र के अच्छे जानकार थे। किसी भी समय कामगार को कुछ पूछना होता तो सीधा इनके पास आता था। वे महाराजा प्रतापसिंह जी से जब चाहे मिल सकते थे। तब आज के जैसी बात न थी। आज किसी सरकारी आफिसर से बात करनी हो तो सौ खुशामद करो, रिश्वत दो, माथा रगड़ो, हाथ जोड़ो, सन्दर्भ के लिए किसी जानकार की मिन्नत करो तब कहीं जाकर दर्शन हो सकेंगे। कपड़े ढंग के न हों तो फटकने नहीं देंगे। सरकार के पास अत्यन्त कलाकृतियां थीं। चित्रों का तो कोई हिसाब ही नहीं था। उन दिनों सरकारी वृत्ति ज्यादा न थी परन्तु सरकार ने कभी आपकी मांग को टाला भी नहीं। इस परिवार के राजा-महाराजाओं ने कांगड़ा के राजाओं के घर शादियां कीं। दहेज में जवाहरात के साथ-साथ चित्र भी भेंट किये गए। उस वक्त भी चित्रों की तुलना जवाहरात से होती थी। बड़ी विचित्र सी बात है। इंग्लैंड में वेम्बले नुमाइश (Wembley Exhibition) हो रही थी जिसके लिए इनसे मंगवाये गये। एक चित्र सोहनी महिवाल का था अत्युत्तम और बहुत सूक्ष्म, उसके लिए अनुरोध किया गया। इन्होंने अपने चित्र देने से इन्कार कर दिया। इस प्रदर्शनी की याद में लिचोनेल हीथ ने एक पुस्तक प्रकाशित की। सम्भवत: आपका नाम भी विलायत में चमकता। आप की एक बहुत बड़ी कलाकृति विक्री के लिए आई। इसमें साठ (60) चित्र थे। थे भी बड़े आकार के। यह जम्मू प्रांत दुर्गा का प्रदेश है। यह विशुद्ध पहाड़ी चित्र-शैली की कलाकृति थी। बिक्री में गड़बड़ हो गई। व्यापारी पूरी कलाकृति को बेचना चाहता था। सरकार सिर्फ दो-चार ही खरीदना चाहती थी—बात नहीं बनी। व्यापारी अटल रहा। सौदा क्या बना – अनर्थ हो गया। व्यापारी मर गया तो पागल बेटे ने उस सारी कलाकृति को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट दिया। साठ की साठ तस्वीरें खत्म हो गईं। यह आकार में बड़ा ही नहीं अपितु सुन्दर भी था। यह तो इनके हाथ का था और खालिस पहाड़ी कलमें अलग ही चमकती है। महीने क्या वर्षों की कमाई

निरर्थक हो गई। यह ठीक है कि इस पर आप का अधिकार नहीं था परन्तु उस पर आपने बहुत मेहनत की थी। भावी अवश्यम्भावी है किसे दोष दें— सरकार को जिसने चित्रों को इकट्ठा नहीं खरीदा। व्यापारी को जिसने दो-चार बेचने से इन्कार कर दिया, पागल को, जो पहले से पागल था और जिसे सुध ही न थी। होनी का अर्थ है 'होना ही नहीं'। इस कला का घोर विनाश हुआ है। कितनी कलाकृतियां पड़ी-पड़ी कीड़ों ने खाईं, कितनी छीजन का शिकार हुई, कितनी फट गई और कितनी जल कर राख हो गई। अब सिर्फ कोसना कि यह देश छोड विदेश गई—हम ने खुद निकाल दी। पुराने कोट को तो हमने सम्भाल कर रखा परन्तु अपने पुरातत्व और कला को सम्भाल नहीं सके। पश्चिम को देखो, क्या उन्होंने कभी किसी चीज़ को ऐसे नष्ट होने दिया है। हर शाहकार, कलाकार की सम्पत्ति है उसके न रहने से कितनी क्षति होती है।

मुझे एक व्यक्ति ऐसा भी मिला जो एक चित्र विशेष को चुराकर ले गया और फिर उसने दुबारा कभी आपको सूरत भी नहीं दिखाई। कोई ऐसा-वैसा आदमी भी नहीं था, जाना-माना, धनवान, नेक दिखने वाला, उस की मति भ्रष्ट हो गई, पर इन्होंने एक बार उसका न नाम लिया और सब चुपचाप सह लिया।

एक चर्चा मैं और करना चाहूंगा कि छुनिया के पास अनेक पढ़े-लिखे लोगों का उठना-बैठना था। उनकी दी हुई रॉयल अकेडमी की किताबें, कुछ अन्य चित्र भी देखे गये। यहां तक कि Vere Foster Series भी नए शिक्षार्थियों के लिए उपलब्ध थी। इसके अतिरिक्त उन दिनों रवि वर्मा की बंबई में छपी हुई तस्वीरों का बाजार में अम्बार लग गया। फोटोग्राफी आ ही गई थी इन चीजों ने उनकी कला पर अपना प्रभाव दिखाया गया। नई चीज़ देखने का बड़ा चाव होता है। नई फिल्म ही रिलीज हो लोग कैसे भागते हैं।

गुरु परमपूज्य है परन्तु जो कुछ कह रहा हूं अपने विचार और समझ के अनुसार कह रहा हूं। मुगल शैली में यह सब कुछ नहीं था। जहांगीर शहंशाह के वक्त पाश्चात्य कला का क्या कोई प्रभाव नहीं हुआ? उसके बाद भी कई परिवर्तन हुए। क्या इस पहाड़ी प्रदेश में कोई तबदीली नहीं आई। यूनानी कला ने गांधार नियम को जन्म नहीं दिया क्या? कला कभी किसी की मोहताज नहीं रही। पक्षी के लिए सम्पूर्ण गगन है और कला के लिए सम्पूर्ण विश्व। आपके चार प्रकार के पुरुषों के चित्रों में दो चित्र प्राचीन पहाड़ी शैली के और हस्त तथा शश' नई शैली के थे। हर चित्रकार की अपनी शैली होती है। आपके चित्रों में 'कुम्भकर्ण' के दो चित्र, युगल किशोर एवं एक खड़ी लड़की के चित्र नितांत अलग दीखते हैं। अच्छा। इसे जाने दें। मैं बहुत देर से आप को

कुरेद रहा हूं। आप को अन्य कई काम होंगे। मैं छुनिया जी से कहता हूं यह बात लगभग 1922 ईस्वी की है जब छुनिया लौट आए थे। इससे पहले कि जिन चित्रों की स्मृति मुझे है वे है राधाकृष्ण का चित्र जिसका आधार आप को 1898 ई० की लंदन की नुमाइश की किताब रॉयल अकेडमी में मिला। उस चित्र का शीर्षक था Fairy Wooing। राधा जल में स्नान कर रही है और कृष्ण नदी के तट पर राधा के मुख का चुम्बन ले रहे हैं। इन्होंने कड़ी मेहनत की परन्तु उसे प्रस्तुत नहीं कर पाए। चित्र के चारों ओर कश्मीर के चार परिदृश्य थे। वह चित्र बुरी तरह नष्ट हो गया। हाशिये वाला परिदृश्य कोई ले गया और बीच की तस्वीर किसी और के काम आई। महाराजा प्रताप सिंह के वक्त उनके गुरु ने आयुवर्द्धन के उद्देश्य से उपासना करने के लिए शिव की तस्वीर बनाने को कहा। फिर उसकी संगमरमर की मूर्ति भी बनी। जयपुर के शिल्पकार दो वर्ष तक जम्मू में रहे। शिव चित्र की दो प्रतियां तैयार हुईं। शर्व शिवजी का अवतार था। जिस समय नृसिह अवतार ने हिरण्यकश्यप को मार डाला—उसका क्रोध नहीं घटा तो देवताओं ने शिव के समक्ष प्रार्थना की कि आप तो सब कुछ जानते हैं—कृपा करो। तब भगवान ने शर्व का अवतार लिया। इस तस्वीर में ऊपर का भाग पक्षी का और अधोभाग शेर का था। इस शरीर में असंख्य देवी-देवता थे। बड़ा श्रमसाध्य कार्य था। इसे बनाने में इन्होंने कई वर्ष लगाए। यह चित्र बहुत ही अद्भुत और सुन्दर था। इसकी एक अनुपम प्रति किसी के घर में प्रतिष्ठित है और संगमरमर की मूर्ति रघुनाथ मन्दिर के पुस्तकालय में पड़ी है।

आपके शिष्यों में गंगा विष्णु था। यह लड़का ग्रेजुएट था और बहुत होनहार था। यह लड़का 'मथुरा दास कवि' का पुत्र था। मैंने विश्वनाथ टेली-ग्राफ ऑप्रेटर भी देखा था—उसकी कोई चीज मुझे प्राप्त नहीं हो सकी। वैसे 'सुखां' ने बहुत सेवा की थी। गूंगा था बेचारा, मात्र सुहाग की पुड़िया ही रंग सका। रामप्रसाद ने बड़ी देर शागिर्दी की इनके बाद वह गायन विद्या की ओर मुड़ गया। वहां उसे बहुत यश मिला। आप से मुलाकात हुई होगी और—बस चल दिये। ऐसे थे चित्रकार जगतराम छुनिया।

ऐसे कला आख्यान की स्मृति शेष को अनंत प्रणाम। □

हरिजन सेवी—म्हाशा रामचन्द

□ वी० पी० शर्मा

डुग्गर के प्रथम हरिजन उद्धारक के रूप में जिन्होंने जम्मू के प्रथम शहीद होने का गौरव प्राप्त किया है। वह थे म्हाशा रामचन्द जी। इनका जन्म हीरानगर (कठुआ) में 1 जुलाई 1897 ई० को हुआ। इनके पिता का नाम ला० खोजूशाह महाजन था जो हीरानगर के सरकारी कोष में खजांची के पद पर नियुक्त थे। वह अपने पिता के सबसे पहले पुत्र थे। आपके आठ छोटे भाई एक बहिन थी। आपके दो भाइयों श्री शिवराम गुप्ता और श्री गुरुदत्त गुप्ता ने भी देश सेवा में सराहनीय योगदान दिया। श्री शिवराम जी मशहूर अखबार "अमर" के सम्पादक थे और श्री गुरुदत्त गुप्ता रियासत के डाइरेक्टर लोकल बाडीज़ के पद से सेवा निवृत्त होने के बाद साप्ताहिक अखबार "आज़ाद" के सम्पादक बने। तीसरे श्री ज्वाला प्रकाश जी जज नियुक्त हुए अब वे सैहोर (मध्य प्रदेश) में एडवोकेट हैं। बाकी भाई हीरानगर में ही रहे।

बालक रामचन्द जी की अध्ययन में विशेष रुचि होने पर वे अपने ही गांव के वरनेकुलर मिडल स्कूल में आठवीं श्रेणी पास करने के पश्चात् पढ़ाई छोड़ने पर विवश हो गये। उस ज़माने में रियासत में मुख्यत: डोगरी और फारसी दोनों भाषाएं प्रचलित ही थीं आपके पिता डोगरी में ही राज्य कोष का काम किया करते थे पर डोगरी के स्थान पर उर्दू भाषा को प्रमाणित किए जाने पर उन्हें सेवा से पृथक होना पड़ा और सरकार ने उनके स्थान पर श्री रामचन्द जी को नियुक्त कर दिया।

आरम्भ से ही रामचन्द जी की प्रवृत्ति बड़ी धार्मिक थी और वह दयानन्द जी सरस्वती के दिखलाए हुए वैदिक धर्म के अनुयायी बन गए। 19 वर्ष की आयु में ही उन्होंने हरिजनों के उद्धार और सामाजिक सुधार का बीड़ा उठा

लिया। राजनीति में भी हिस्सा लेने लगे इसलिए सरकार ने उनका तबादला बसोहली कर दिया। वहां भी उन्होंने अपना कार्यक्रम जारी रखा। फिर इनका तबादला कठुआ कर दिया गया। उन दिनों अपने आपको सवर्ण हिन्दू कहलाने वाले लोग बड़ा विरोध करते थे और सरकार भी इस कार्य को अच्छा नहीं मानती थी। 1918 ई० में आपका तबादला साम्बा में कर दिया गया। वहां पहुंचते ही उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। उन्हीं दिनों वहां एक बीमारी फैल गई जिससे कई लोग कालकवलित हो गये रामचन्द जी इन रोगियों की सेवा में जुट गए। इसके पश्चात् साम्बा के वरिष्ठ लोगों के विरोध की परवाह न करते हुए आपने बड़ी सफलता से आर्य समाज का उत्सव मनाया।

आल इण्डिया कांग्रेस के खादी ग्राम उद्धार और हरिजन उद्धार से वह बड़े प्रेरित हुए। सरकारी कर्मचारी होते हुए उन्होंने भी 13 अप्रैल 1919 के दिन जलियांवाला बाग कांड में भाग लिया। वहां वह गोली लगने से बच निकले। वह दिसम्बर 1919 में अमृतसर कांग्रेस सम्मेलन में शामिल हो गये।

1922 में श्री रामचन्द जी का तबादला अखनूर में कर दिया गया। यहां के लोग छूतछात के कट्टर पक्षपाती थे और हरिजनों से बड़ी घृणा करते थे। उनसे मुफ्त में बेगार लेते थे। दुर्नीत लोग हरिजन कन्याओं और स्त्रियों से बलात्कार करते थे। इस अनैतिकता के उन्मूलन के लिये रामचन्द जी ने दलित हिन्दू जातियों की मुक्ति का एक मात्र इलाज हरिजनों को शिक्षित करना ही समझा। एक मकान किराए पर लेकर पाठशाला खोल दी। श्री रामचन्द्र जी के भतीजे श्री राजेन्द्र गुप्ता के सौजन्य से मुझे श्रीरामचन्द जी जो उन दिनों आर्य पाठशाला अखनूर के संस्थापक और मन्त्री थे, की तरफ छापा हुआ इक विज्ञापन भी प्राप्त हुआ है जिसमें उन्होंने इस पाठशाला की स्थापना का ब्योरा दिया है। आपने लिखा है "अछूत उद्धार के निमित्त अखनूर में आर्य पाठशाला 26 बैसाख सं० 1979 को स्थापित की गई। जिसमें उस समय 40 हरिजन युवक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। अखनूर के इलाका में अछूतों की संख्या दस बारह हजार के लगभग है। हथकरघा चलाना इनका पेशा रहा है पर अब ज्यादा लोग लकड़ी घास काट कर बेचते हैं और इसी से या मजदूरी करके करके अपनी आजीविका का प्रबन्ध करते हैं। इन लोगों को शिक्षा देने और फिर से खादी की कताई और बुनकरी के काम की शिक्षा देने में ही इनकी भलाई हो सकती है। पर दुर्भाग्य वश पुराने विचारों के लोग इस कार्य के लिए मकान किराये पर देने से भी इन्कार करते हैं। इसलिए पाठशाला के लिए अपना भवन बनाना जरूरी है ला० जमीतराय मल्होत्रा प्रधान आर्य पाठशाला ने तीन सौ रुपये दे दिए हैं और रूपा नामी एक हरिजन ने अपनी ज़मीन दान

दे दी है। इस विज्ञापन में श्री रामचन्द्र जी ने दानियों से अपील की है कि वह यथाशक्ति दान देकर इस योजना को सफल बनायें।

इसका अखनूर के लोगों ने बड़ा विरोध किया सरकारी अफसरों को शिकायतें भेजीं। वहां कुल सात-आठ आर्यसमाजी थे जिन पर हमले भी किए गए। जुलाई 1922 में तो हिन्दू बिरादरी ने वहां के आर्य समाजियों का बहिष्कार कर दिया। यहां तक कि जमादारों ने भी डर के मारे इनके घरों में जाना छोड़ दिया। लेकिन श्री सीताराम जी, श्री दीनानाथ जी, श्री हेमराज जी आदि ने डटकर इस विरोध का मुकाबला किया। श्री रामचन्द जी ने तो स्वयं अपने आर्य समाजी भाइयों के घरों में जाकर अपने हाथों सफाई का काम आरम्भ कर दिया। पीने का पानी नदी से लाने के लिए हरिजनों ने साथ दिया आखिर में अखनूर से दो मील दूर आर्य पाठशाला की स्थापना की गई।

श्री रामचन्द जी ने आर्य स्वराज सभा लाहौर से भी पत्र व्यवहार किया जहां से तीन स्वयं सेवक श्री देसराज, श्री जगन्नाथ और श्री कृष्ण दयाल भेजे गए। जिन्होंने आर्य समाज का प्रचार किया और विरोध को शांत किया। फिर श्री सत्यार्थी जी जो "वीर संदेश" लाहौर के सम्पादक थे अखनूर आए और वहां 15 दिन प्रचार किया जिस से अखनूर में आर्य समाज की जड़ें मज़बूत हो गईं। पाठशाला के विद्यार्थियों में भी नया जीवन आ गया। हरिजनों में जागृति पैदा हो गई।

पाठशाला के लिए श्री रूपानामी हरिजन ने अपने खेत की भूमि दान तो दी ही थी और कई भद्र पुरुषों ने श्री रामचन्द जी की निष्ठा को देखते हुए इनका स्वप्न साकार करने में दिल खोल कर दान दिया। फलस्वरूप वेद मन्दिर स्थापित हो गया।

महात्मा हंसराज जी ने भी लाहौर से तीन स्थायी अध्यापक भेजे। आर्य समाज की गुरुकुल पार्टी ने भी प्रचार में सहायता दी।

अखनूर में कामयाबी के बाद आस-पास के ग्रामों में भी हरिजनों में जागृति पैदा हुई और कई स्थानों से हरिजनों के लिए पाठशालायें बनाने के लिए जमीन देने की पेशकश करने लगे।

अखनूर से 2 मील की दूरी पर बटैड़ा नामक ग्राम के हरिजनों ने श्री रामचन्द जी को बुलावा भेजा। 31 दिसम्बर 1922 के दिन महाशा रामचन्द जी अपने साथियों और विद्यार्थियों को साथ लेकर बटैड़ा की ओर चल पड़े। सब के हाथों में झंडे थे जिन पर "ओइम्" महामन्त्र अंकित था। बटैड़ा में

हवन आरम्भ हुआ मगर वहां कुछ लोग राक्षसों की भांति यज्ञशाला पर टूट पड़े। झंडे फाड़ डाले, बच्चों को घोड़ों के पांव तले रौन्द डाला और यज्ञशाला को नष्ट कर दिया। इस तरह उस दिन श्री रामचन्द जी निराश वापस लौट गए।

पर 14 जनवरी 1923 के दिन बटैड़ा में पाठशाला की स्थापना के लिए उन्होंने फिर वहां जाने का प्रोग्राम बनाया। इसके लिए लाहौर से कुछ आर्य समाजी उपदेशकों को भी बुलाया। वहां के कट्टर पंथियों ने उसी दिन वहां एक छिंज (कुश्ती) का प्रोग्राम भी रख दिया। जो श्रीरामचन्द जी की हत्या करने का षड्यन्त्र था।

नियत तारीख पर जम्मू से वीर रामचन्द जी, ला० भगतराम, ला० अनन्तराम और श्री ओमप्रकाश सत्यार्थी बटैड़ा की ओर चल दिए। अभी वे बटैड़ा से 4 मील दूर ही पहुंचे थे कि बटैड़ा से आते समय उन्हें मेहता सावनमल्ल आर्य उपदेशक मिले और उन्हें सावधान किया कि रामचन्द जी की हत्या करने की साजिश की गई है इसलिए लौटना ही उचित होगा।

जब यह वापस लौट रहे थे तो पीछे से कुछ लोगों ने हल्ला बोल दिया और सब आर्य सेवकों पर लाठियों से हमला किया। एक शोर मचा कि सबसे पहले रामचन्द को ही मारो। जालिमों ने रामचन्द पर ताबड़-तोड़ लाठियां बरसाते हुए पूछा "कहो तुम महाजन हो या मेघ (हरिजन)" खून से लथपथ वीर रामचन्द ने उत्तर दिया कि मैं मरते दम तक हरिजन ही हूं और रहूंगा। इस पर किसी दंगईयों ने उन पर लोहे की लट्ठ से हमला कर दिया सिर पर गहरी चोट के कारण लहु-लुहान वीर बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़े मृत जानकर सभी हमलावर भाग गये। बेहोशी की हालत में ही इन्हें जम्मू के अस्पताल में पहुंचाया गया। जहां 20 जनवरी 1923 ई० की रात को वीर रामचन्द अमर गति पा गये। सारे शहर में यह खबर बिजली की भांति दौड़ गई। हजारों लोगों ने उनकी शव यात्रा में भाग लिया। इस बलिदान से न केवल रियासत भर में बल्कि सारे पंजाब में हाहाकार मच गया।

वीर रामचन्द जी के बलिदान स्थान पर आर्य प्रतिनिधि सभा लाहौर द्वारा बटैड़ा ग्राम में इस आर्य वीर की स्मृति में पाठशाला और आर्य मन्दिर और एक कुआं भी बनवाया। इस स्थान पर प्रति वर्ष वीर मेले का प्रबन्ध किया जाता है। अब यह सारा प्रबन्ध आर्य समाज जम्मू द्वारा किया जाता है। आर्य समाज ने यहां एक पाठशाला चला कर वीर रामचन्द जी की अंतिम इच्छा भी पूरी कर दी फलतः इस बलिदान से रियासत भर में आर्य समाज के कार्य को योगदान मिलने लगा।

इनके बलिदानी निधन पर लाहौर में "अखिल भारतीय आर्य प्रतिनिधि सभा।" "आर्य स्वराज सभा" "अखिल भारतीय सनातन धर्म सभा", "अखिल भारतीय ब्रह्म समाज सभा" व अनेक संस्थाओं ने सम्मिलित होकर शोक सभा का आयोजन किया। यह विशाल श्रद्धांजलि समारोह "गुरुदत्त भवन लाहौर में राजा नरेन्द्र नाथ जी की अध्यक्षता में हुआ जिसमें महात्मा हंसराज, बखशी, टेकचन्द ला० मेहरचंद महाजन, महाशय कृष्ण, डा० गोकुलचन्द जी नारंग, राए बहादुर रामसरन दास जी व अनेक जाने माने लोगों ने शहीद को श्रद्धांजलि अर्पित की।

महाशय नानक चन्द "नाज़" सहायक सम्पादक दैनिक "प्रताप" लाहौर ने शहीद महाशय रामचन्द्र जी की याद में निम्नलिखित काव्यांजलि प्रस्तुत की जो दैनिक "प्रताप" में प्रकाशित हुई।

एक जमाना जो सौगवार है आज — गम में किसके जिगर फिगार है आज
किस जवान मर्ग का ये मातम है — क्यों बन्दा आंसुओं का तार है आज
जाम जिसने पिया शहादत का — धर्म पर कौन जान निसार है आज
किस शहीद वफा की रहलत है — क्यों हर शख्स वेकरार है आज
बाद साल आई है बसंत की रुत — क्यों हर इक गुनचा दागदार है आज
रामचन्द आर्या शहीद हुये — ये खबर आयी दिल फिगार है आज

मेघ जाति का गम गुसार था वो
उनपे जी जान से निसार था वो

हां सही तू ने हर तरह वेदाद — मुंह से निकली मगर न कुछ फरियाद
देता था दूसरे को जो आजादी — हो गई आत्मा तेरी आज आजाद
आर्या जाति है मां शहीदों की — क्यों न इसका चमन हो फिर बरबाद
तेरे मरने का यूं ही जिक्र हुआ — आ गयी दिल में लेखराज की याद
कौमें बनती हैं उन शहीदों में — सिर कटाते हैं जोपये बुनियाद
अपना विश्वास है कि वेदों का — सारे संसार में बाजेगा नाद

इस शहादत पे शमस क़मर व फलक
नाज करते रहेंगे शहादत तक

गुलाम रसूल 'कामगार'

□ मोतीलाल साकी

गुलाम रसूल 'कामगार' से मिलने का सौभाग्य मुझे उस समय मिला जब वे काफी समय से एकान्तवास करने लगे थे और साधना में ऐसे रत रहने लगे थे कि मिलने वालों के लिए उनके पास समय न था। हमसे भी मात्र कश्मीरी होने के नाते मिलते थे। सन् 1972 ई० में कश्मीर कल्चरल आर्गनाईज़ेशन की ओर मे कश्मीरी साहित्यकारों का एक दल डोडा ज़िले की यात्रा पर शेखु आलम के पैतृक निवास स्थान पर उनकी स्मृति को ताज़ा करने के निमित्त गया था। उस वर्ष उक्त संस्था कश्मीर की सांझी विरासत के इस महान व्यक्तित्व की छह सौवीं जयन्ती मना रही थी। हमारा पहला पड़ाव डोडा था जहां हमारी भेंट कवि रसा जाविदानी से हुई। हमने डोडा में एक मुशायरे का आयोजन भी किया जिसमें 'रसा' साहब भी सम्मिलित हुए। डोडा से हमारा दल किश्तवाड़ में भी गया वहां पर स्थानीय साहित्यकारों ने हमारे ठहरने का प्रबन्ध चौगान के एक किनारे पर स्थित डाक बंगले में किया था। हम कई दिन किश्तवाड़ में रहे. हम शाह फरीदुद्दीन बग़दादी के रोज़े पर भी हाज़िरी देने गये और हमें शाह असरार साहब के दरबार में जाने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ, हमने जियारत के मुतवलियों (सम्पत्ति की देखरेख करने वाले भक्तों के) पास कुछ दुर्लभ वस्नुओं को भी देखा जो कला एवं संस्कृति की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इन दुर्लभ वस्तुओं में मिनियेचर चित्र भी अच्छी खासी संख्या में हैं जिनको निस्सन्देह पहाड़ी चित्रकला के अन्तर्गत रखा जा सकता है। चित्रकला के इन नमूनों का विषय आम पहाड़ी चित्रकला के नमूनों से भिन्न है; इस प्रकार पहाड़ी चित्रकला की एक और विधा दृष्टिगोचर है। इतना ही नहीं बल्कि इस बात का संकेत भी मिलता है कि किश्तवाड़ में भी चित्रकला की

परम्परा काफी सशक्त रही है।

किश्तवाड़ की हमारी यात्रा तब तक अधूरी ही रहती यदि हम 'कामगार' साहब के दर्शन लाभ न करते। किश्तवाड़ के दूसरे साहित्यकार एवं कविगण हमारे साथ थे तथा हमारा अतिथि सत्कार करने में लगे थे। कई मित्रों ने हमारे आने के उपलक्ष्य में कई भोज आयोजित किये।

एक दिन हम डाक बंगले से निकल पड़े और और 'कामगार' साहब के द्वार पर दस्तक दी। हमारे आने की सूचना मिलते ही उन्होंने हमें बैठक में बुलवाया। उनके आभायुक्त मुख मण्डल को निहार कर हम सब लोग बाग-बाग हो गये। उनके दमकते मुखमण्डल की आभा उस समय देखते ही बनती थी, लगता था कि अपने पुराने हम वतनों से मिलकर वे कुछ अधिक ही आनन्दित हो उठे हैं। सर्वप्रथम हमारा सत्कार सुगन्धित अम्बरी सेबों से किया गया, उसके पश्चात् परम्परानुसार कश्मीरी कहवा जिसमें केसर, की सुगन्ध इलायची और बादाम डाले गये थे 'कामगार' साहब मुस्कराते हुए प्रफुल्ल वदन और अत्यन्त शान्त मुद्रा में अपनी तोतली ज़बान से हमारी बातों का उत्तर देते रहे थे। इस मुलाकात के दौरान हमने आपसे एक मुशायरे की अध्यक्षता करने की विनती की। उनके अध्यक्षता स्वीकारने पर तो स्थानीय साहित्यकार आश्चर्यचकित रह गये क्योंकि 'कामगार' साहब ने पर्याप्त समय से सार्वजनिक आयोजनों में जाना छोड़ दिया था। दूसरे दिन शाम को किश्तवाड़ की जामा मस्जिद के परिसर में 'कामगार' साहब की अध्यक्षता में मुशायरा हुआ, जो बहुत ही सफल रहा। मुशायरा रात के बारह बजे तक चला और वे मुशायरे की समाप्ति तक मंत्रमुग्ध-से बैठे रहे। भीड़ इतनी अधिक थी, लगता था कि समूचा किश्तवाड़ उमड़ आया है। इस बार जैसा मुशायरा किश्तवाड़ के इतिहास में संभवत: पहली बार हुआ था। हमें 'कामगार' साहब का स्नेह-सन्निध्य काफी देर तक प्राप्त हुआ। इस मुशायरे में आपने एक 'नात' (ईश्वरीय प्रशंसात्मक या अध्यात्म से सम्बन्ध रखने वाला गीत) पढ़ी थी।

'कामगार' साहब के पुरखे मूलतः अनन्तनाग, कश्मीर के निवासी थे। जब पठानों ने कश्मीरियों पर घोर अत्याचार करने शुरू किये उस समय 'कामगार' साहब के परदादा ख्वाजा मुहम्मद सखी पठानों के अत्याचारों से बचने के लिए अपनी ज़मीन, घर और सम्पत्ति छोड़कर पलायन कर गये और सपरिवार किश्तवाड़ पहुंच कर ही सांस ली। और फिर यहीं के होकर रह गये।

गुलाम रसूल का जन्म 17 जुलाई सन् 1886 ई० को किश्तवाड़ में

ख्वाजा गुलाम मुहम्मद कामगार के यहां हुआ। आपने प्राथमिक शिक्षा ख्वाजा सैफउल्लाह के दारुल अलूम (विद्यालय) में पाई। ख्वाजा सैफ उल्लाह अपने समय के माने हुए विद्वान भी थे और ईश्वर भक्त भी। आपके विद्यालय के द्वार सभी लोगों के लिये खुले थे। उर्दू के अतिरिक्त ख्वाजा साहब अरबी-फारसी पर भी अच्छा अधिकार रखते थे। खताती (फारसी लिपि का चित्रकलात्मक रूप) में भी आपकी रुचि थी और कविता भी मार्के की करते थे। 'कामगार' साहब के भाई ख्वाजा अज़ीज़ उल्लाह भी शायर थे।

दारुल अलूम में शिक्षा प्राप्त करने के दौरान 'कामगार' साहब ने खताती सीखने का सिलसिला भी आरम्भ किया। खताती, जोकि इसलामी कलाओं में चित्रकला का प्रतिरूप समझी जाती है, का सिलसिला इन्होंने काफी देर तक जारी रखा और इस कला में इन्हें काफी हद तक विशेषज्ञता प्राप्त हुई।

जहां तक शायरी का प्रश्न है आपको यह चीज़ अपने पूज्य गुरु सैफ उल्लाह और भाई ख्वाजा अज़ीज़ उल्लाह से दाय के रूप में मिली थी। आपको तखल्लुस यानि उपनाम की तलाश भी नहीं करनी पड़ी आपने कामगार का प्रयोग उपनाम के रूप में किया जोकि वस्तुत: आपकी वांशिक उपाधि है।

'कामगार' साहब सन् 1907 ई० में राजस्व विभाग में नियुक्त हुए और सन् 1947 ई० तक पटवारी, गिर्दावर और कानून गो के पदों पर कार्यरत रहे। अवकाश प्राप्ति के पश्चात् भी आप बहुत सक्रिय रहे। समाज-सेवा के अतिरिक्त आपने राजनीति-क्षेत्र में भी अपने प्रतिभा प्रदर्शित की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् 'कामगार' साहब नेशनल कान्फ्रेंस के तहसील परिषद् के अध्यक्ष बने फिर आप ज़िला विकास परिषद् के सदस्य भी रहे, सामाजिक कार्यक्रमों से भी संबद्ध रहे।

'कामगार' साहब ने विद्यार्थी जीवन से ही कविता लिखना आरम्भ किया था और यह क्रम उनके निधन तक चलता रहा। आपकी कविता कश्मीरी तक ही सीमित नहीं थी अपितु फारसी और उर्दू के भी जाने माने कवि थे।

बरसदि नेशम चू कासिद कामयाब आमद चि सूद
नामअ अम चु बअद मरदन गर जवाब आमद चि सूद
खोगर दीदारि जानां हस्त ईं जें के नजर
बरसदम गर रोजि मअशर अफताब आमद चि सूद

अर्थात्—मेरे शव पर अगर सन्देशवाहक सफल होकर आया तो भला उसका क्या लाभ

अगर मेरे खत का जवाब मेरी मौत के बाद वसूल हुआ, उसकी हैसीयत भला क्या है

मेरी दृष्टि तो प्रिय के दर्शनों की प्यासी है प्रलय के दिन अगर सूरज मेरे सिर पर चमका उसका भला क्या लाभ ?

फारसी पर 'कामगार' साहब की पकड़ के विषय में देश की उच्च साहित्यिक संस्थाओं में भी चर्चा रही आप राष्ट्रपति की ओर से प्रमाण-पत्र और पुरस्कार से भी सम्मानित हुये।

फारसी की ही भांति आप उर्दू भी अच्छी रचना करते थे—

खोमे गुल में सुर्ख रूई तेरी
सन्तरी हैं खार तू शाहे चमन
तू हुस्ने वफा शाख से मिलजुल न जा
उनका है दीवार से बाहर वतन

विभिन्न भाषाओं का अच्छा ज्ञान होने के कारण 'कामगार' साहब बहुत अच्छे अनुवादक भी सिद्ध हुए क्योंकि वे भाषाओं की आत्मा तथा स्वभावों से पूरी तरह परिचित थे। आपके अनुवादों का क्षेत्र भी विस्तृत था। आपने फारसी से कश्मीरी और कश्मीरी से फारसी में अनुवाद तो किये ही परन्तु कई फारसी रचनाओं को भी पूरी कलात्मकता के साथ उर्दू के सांचे में ढाला।

सुविख्यात पुस्तक 'विर्दुलमरीदीं' को 'कामगार' साहब ने अत्यन्त सावधानी बरतते हुए उर्दू का रूप दिया तथा अलामा इकबाल की मशहूर मसनवी को आपने फारसी से कश्मीरी में रूपान्तरित किया। इस रूपान्तरण के लिए राज्य की कलचरल अकादमी ने आपको पुरस्कृत भी किया।

'कामगार' साहब कृत कश्मीरी 'ऋषिनामा' का फारसी अनुवाद एक अप्रतिम कृति है।

किशतवाड़ में इस्लाम का प्रचार करने वाले हज़रत फरीदुद्दीन बगदादी की जीवनी को 'सवाने फरीदिया' के नाम से 'कामगार' साहब ने लिपिबद्ध किया है जो विषय-वस्तु का बखूबी प्रतिपादन करती है। इनकी एक और पुस्तक 'रोशन सितारे' है। इस पुस्तक का मूलपाठ कश्मीरी, फारसी और उर्दू तीनों भाषाओं में है।

'कामगार' साहब की कविता इन्सान के अन्तर की कविता है, यह घटनाओं का चित्रण नहीं अपितु आत्मा का स्वर है जिसे आम भाषा में तसव्वुफ

कहा जाता है। आपकी शायरी के एक एक हिस्से पर तबलीग का रंग चढ़ा है ऐसा होना ही था क्योंकि आपका जीवन नियमपरकता एवं तितिक्षा का जीता जागता उदाहरण है।

'कामगार' साहब लिखते तो रहते थे परन्तु अपनी रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ नहीं भेजते थे यही कारण है कि उनकी कश्मीरी, उर्दू और फारसी कृतियां न तो उनके जीवनकाल में प्रकाशित हुई और न अब इनके प्रकाशित होने की सम्भावना है। 'कसीदालामिया' को आपने जनता के निवेदन करने पर प्रकाशित करवाया, नहीं तो यह पुस्तक भी अभी तक पाण्डुलिपि के रूप में ही होती। राज्य की कलचरल अकादमी ने आपकी देन को मान्यता प्रदान करते हुए आपको 'खिल्लते फाखरा' से सम्मानित किया।

'कामगार' जीवन मूल्यों के वह जगमगाते दीपक थे जिससे सूरज झिझकता था।

उनका देहान्त 198० ई० में हुआ। काल शिला पर उत्कीर्ण लेख की भांति उनका व्यक्तित्व सदा के लिये एक पुण्य प्रेरणा बना रहेगा। ऐसे व्यक्तित्व साहित्य जगत के स्मृति पटल पर बार-बार उभरते रहेंगे।

—अनु० : पृथ्वीनाथ मधुप

पं० रामदत्त मंगोत्रा बनाम 'हकीम दुआन्नी वाले'

□ बंसीलाल गुप्ता

रियासत जम्मू कश्मीर के नगर बिशनाह में जन्में वैद्य-रामदत्त मंगोत्रा एक सामाजिक आख्यान के रूप में जाने जाते हैं। वो "दुआन्नी वाला हकीम" के नाम से प्रसिद्ध थे, और इसी नाम से जाने जाते थे।

इनका जन्म बिशनाह के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बचपन में ही ये पिता स्नेह से वंचित हो गये। और इनके चाचा के यहां इनका पालन-पोषण हुआ। वैद्य जी अपने चाचा के कार्य में पूर्ण सहयोग देते थे। अध्ययन में भी भी खूब रुचि लेते थे। वैद्य जी ने अध्ययनकाल में ही रोगों एवं रोग निवारक वनस्पतियों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उनको यह सब ज्ञान अपने उस साधु स्वभाव चाचा से एवं "मां काली" के आशीर्वाद से प्राप्त हुआ। वैद्य जी को अपने चाचा जी का कार्य बहुत पसन्द था। अत: उन्होंने मैट्रिक करने के बाद, आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण प्रारम्भ कर दी। वैद्य जी आधुनिक एवं वैदिक शल्य चिकित्सा-विज्ञान के माहिर थे।

"आयुर्वेदाचार्य" बनने के बाद 1948 में कैलाश देवी के साथ इनका विवाह हो गया। विवाहोपरान्त, अलौकिक शक्ति एवं अनेकों गुणों से युक्त वैद्य जी, चिकित्सा-विज्ञान प्रशिक्षणार्थ, पुन: वृन्दावन चले गये। प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, वैद्य जी ने वहीं (वृन्दावन में) एक "डिस्पैन्सरी" खोली। दु:खियों की नि:शुल्क सेवा एवं औषधि देकर, खुश होते थे। वैद्य जी वहां विदेशी डॉक्टरों की सहायता भी किया करते थे। पर बाद में उनका मन नहीं लगा। अत: वे जम्मू वापस आ गये और उन्होंने श्री श्री 1008 महामण्डलेश्वर महन्त, रघुनाथ (वर्तमान श्री सीता राम दास जी) मन्दिर, पुरानी मण्डी के संरक्षण में चिकित्सालय स्थापित किया। यहां वैद्य जी प्रतिदिन बैठने एवं रोगियों के रोग का परीक्षण करके, नि:शुल्क औषधी देने लगे। इनका बैठने

का समय हर रोज साढ़े आठ से सायं साढ़े चार बजे तक था। इसके बाद वे भोजन करते थे। वैद्य जी 24 घण्टे में एक बार ही भोजन करते थे। उसमें भी फल या सब्जी ही ग्रहण करते थे। वे अन्न नहीं ग्रहण करते थे।

वे पक्के नियमानुशासी थे। कई लोगों का कहना है कि वैद्य जी कोई बहुत ही जहरीला पदार्थ सेवन करते (खाते) थे। यही कारण था कि इन पर बड़े-बड़े विषैले सांप का विष भी कोई असर नहीं करता था। इन को जो सांप काटता था, वह स्वयं ही मर जाता। और यह बिल्कुल ठीक रहते थे।

हर क्षेत्र के प्रतिष्ठित गण्यमान्य व्यक्ति इनके शिष्य थे। वैद्य जी कैंसर, लकवा, टी० बी० जैसे भयंकर रोगों का इलाज किया करते थे, जो भारत में असाध्य हैं। वैद्य जी के इलाज का परिणाम शतप्रतिशत सही निकलता था।

लोगों का कहना है कि वैद्य जी के पास कोई अलौकिक ईश्वरीय शक्ति थी, जिसके कारण उनके द्वारा प्रारम्भ कार्य में सफलता अवश्य मिलती थी। वे कभी सोते नहीं थे। हां, वे अपने पूजा-कक्ष में दो, अढ़ाई घण्टे योग पर बैठते थे। वे वास्तविक कर्मयोगी थे। वे स्वर्ण-भस्म, हीरा-भस्म जैसी बहुमूल्य औषधि बनाते थे, जिस का शुल्क भी 'दो आना ही' था। उनकी दवा का यही 'दो आने' मूल्य उनके आखिरी समय तक भी रहा। इसलिए ही इनको "दुआन्नी वाला हकीम" से जाना जाता रहा। वैद्य जी की निर्लोभता एवं सही दवा के परिणाम के कारण, उन के पास दूर-दूर के गांव व शहरों से सैंकड़ों की संख्या में हर रोज लोग उनके पास आकर लाभान्वित होते थे। वैद्य जी सर्व धर्म समभाव में विश्वास रखते थे। यही कारण था कि इनके पास सभी धर्मों के लोग आते थे, एवं इनके चरण छू कर प्रणाम करते थे।

उनके विषय में महन्त जी 1008 महामण्डलेश्वर श्री सीता राम दास जी कहते हैं कि वे मां काली के अनन्त भक्त थे। उनको मां काली का आशीर्वाद प्राप्त था। वे कई बार रात को सर्दी में भी रणवीर नहर पर चले जाते और वहां योग, समाधि लगा लेते थे। वे लोक-कल्याणार्थ आये थे। इस प्रकार कई लोग इनके चमत्कार भी देख चुके हैं। जम्मू के "श्याम दास महाजन" को एक बार सांप ने काट लिया। वे बेहोश हो गये। लोग उठा कर उन्हें यहां वैद्य जी के पास ले आये। वैद्य जी उनको अपने पूजा कक्ष में लाये। और उनको लिटा दिया। अपने-आप ध्यानरत हो गये। कुछ देर के बाद, विष अपने-आप समाप्त हो गया। श्याम जी उठ कर खड़े हुए और अपने अनायास रोगमुक्त हो जाने पर अचंभित भी। एक बार राधा कृष्ण के पुजारी बाबा वैद्य जी ने उनके पूजा कक्ष में झांककर देखा, तो अन्दर लाल प्रकाश फैला था। वैद्य जी योग मुद्रा

में बैठे थे, पर उनका सिर गर्दन से अलग होकर, देवी के समक्ष नीचे पड़ा था। बहुत ही रोमांचक दृश्य था, ऐसा देखकर, बाबा पीछे मुड़ गये। कई बार वैद्य जी अपने पूजा कक्ष में होते थे, वहां से लोगों को रास्ते में कहीं से आते मिल जाते थे। इस प्रकार के उनके चमत्कार, कई लोग देख चुके हैं।

वे आधुनिक दिखावे पर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे। साधारण लिबास में ही उनको देखा जाता था। एक बार मैं उनके पास गया। वे पहचानते थे ही। संकेत करते हुए बोले "बैठिए। आजकल आप क्या पढ़ते हैं?" मैंने कहा शास्त्री कर रहा हूं वे बोले "गुरु वे नमः" सही क्या है? मैं बोला : "जी, नहीं"। "फिर क्या होगा?" उन्होंने पूछा। मैंने कहा : "गुरुवे नमः"। वे बोले : "अच्छा, यह बताइये कि ऊपर का वाक्य किस लिए सही नहीं है?" मैंने कहा : "जी, चतुर्थी-एक वचन में "गुरवे" होता है," "गुरुवे" नहीं, इसलिए।" उन्होंने कहा : "है तो ठीक। लेकिन बहुत संक्षेप में आप कह रहे हैं।" उन्होंने उसी बात को इतने सुन्दर ढंग से समझाया, कि किसलिए उपरोक्त "गुरु वे नमः" अशुद्ध है। वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। हिन्दी भाषा के विद्वान तो थे ही।

वे प्रातः साढ़े पांच बजे पर अपनी धर्मपत्नी के साथ ऊपर (सीता राम) मन्दिर में आते और एक घंटा परिक्रमा करते।

वैद्य जी अपनी डिस्पैन्सरी साल में दो दिन ही बन्द रखते थे। एक बैसाखी के दिन और एक जन्माष्टमी के दिन। अगर इस दिन भी कोई दूर से आ जाता, तो उसे निराश नहीं होने देते। उसे औषधि दे कर विदा करते थे।

आश्चर्य की बात है कि वे रोगी से दो आने से अधिक लेते नहीं थे। फिर औषधालय कैसे चलता था? इस बात को कई लोग कहते थे कि वैद्य जी तान्त्रिक थे। बस, इस दुनिया में लोक कल्याणार्थ आये थे। पर यह कहना संगत नहीं। कई बार पूरी जांच के लिये "इन्कमटैक्स वालों ने छापा मारा। अन्दर औषधि एवं मशीन के सिवा कुछ नहीं मिला। कुछ भी हो, समाज उनके सत्कर्म का चिरऋणी रहेगा। 22 जून, 19[illegible]3 को आल इंडिया मैडिकल इंस्टीच्यूट में एक संक्षिप्त बीमारी के बाद उन्हें गो लोक प्राप्त हो गया।

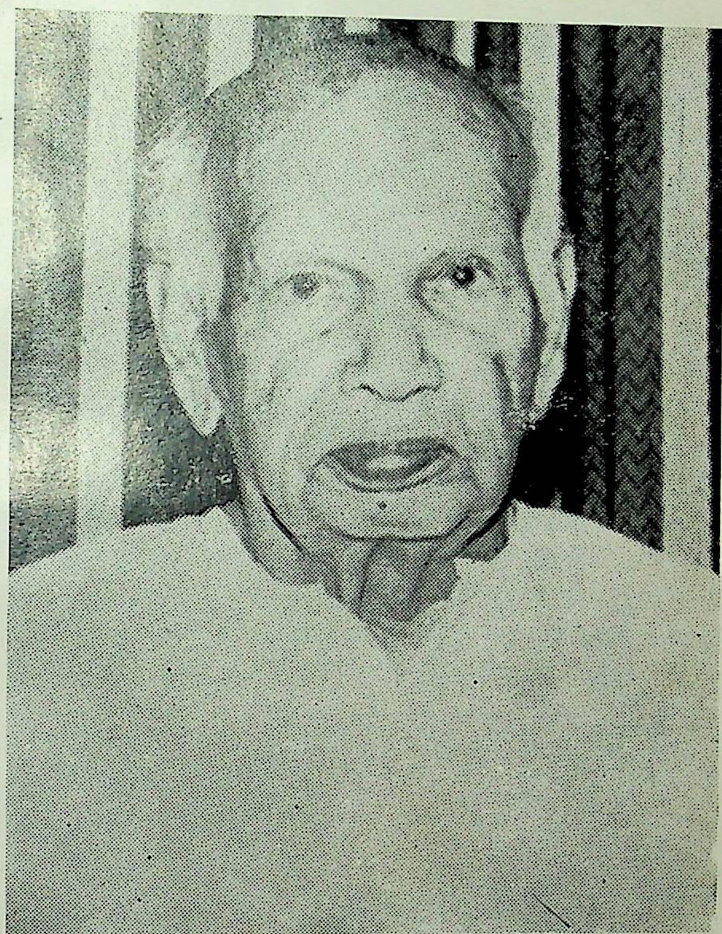
□

डुग्गर-पिकासो : पंडित संसार चन्द बड़ू

□ डॉ. शिव रैना

'मंदिरों के शहर' जम्मू की विश्व-विख्यात 'डोगरा आर्ट गैलरी' के प्रथम संरक्षक एवं बहुमुखी कला-रत्न पंडित संसारचन्द बड़ू के व्यक्तित्व में, एक विलक्षण आकर्षण था। अभिभावकों के साथ गली-बाज़ारों में से गुज़रते अनेक बच्चे बड़ू जी को देखकर, अचानक अपने अभिभावकों से पूछ बैठते : "ये वाले अंकल कौन हैं ?" और उस जानी-मानी हस्ती के विषय में पता चलता, तो बच्चे यह जानकर खुश हो जाते, कि उन्हें (अपने समक्ष) दर्शन सहज हो गए। एक अन्यतम चित्रकार एवं आजीवन कर्मठ बने रहने वाले संसार चन्द बड़ू हंस कर कहते : "भगवान हर जीवित व्यक्ति को प्रातः जागते ही, "चौबीस घण्टों" का "बैंक-बैलेंस" दे देता है। फिर, मनुष्य दुःखी या पिछड़ा क्यों रहे ? भाग्य को क्यों कोसे ? क्यों न ऐसा कोई यादगारी काम कर डाले, जिसे पूरा करने के लिए, परमात्मा ने उसे, इस भरी-पूरी धरती पर भेजा है ?" और, शायद यही कलाकारिता जीवन-मंत्र था उनकी सफलता व लोकप्रियता का। एक प्रेरक स्कूल-मास्टर होने के कारण, यह सीधा-सच्चा कलाकार अन्त तक, स्वयं को 'मास्टर' कहलवाने में, गौरव का अनुभव करता रहा। वैसे भी, विदेशों में किसी विषय का 'मास्टर' बन पाना, विश्व के कठिनतम कामों में से है।

दशकों पूर्व, बड़ू साहब ने आदम-कद आकार का अपना एक ऐसा विलक्षण चित्र बनाया था, जिसकी मिसाल चित्रकला संसार में, बहुत कम मिलती है। आदमकद-आईने के सामने खड़े होकर, बड़ू साहब अपनी ही कद-काठी पर तन्मयतापूर्वक तूलिका चलाते दिखाए गए हैं—और एक नहीं, दर्जनों "पंडित संसारचन्द बड़ू" (एक ही पंक्ति में), चित्रित हो गए हैं ! यह 'कृति' नहीं, सचमुच एक 'आश्चर्य' है। मैंने एक बार जब उनसे इस बहु-प्रतिबिम्बित चित्र के बारे में जानना चाहा तो वे होंठ दबाकर हंसे : "यह चित्र



पं० संसार चन्द बड़ू

मैंने उन लोगों के लिए बनाया है, जिन्हें चित्रकला में यथोचित रुचि नहीं होती। मेरा यह चित्र देखकर, विरक्त लोग भी इस कला के जादू में, खो जाते हैं!" संसारचन्द जी की इसी प्रकार की, सौ से ज्यादा अप्रतिम कला-कृतियां हैं। वह "कला-कला के लिए" के समर्थक रहे। उनकी रंगारंग कृतियां सामाजिक, धार्मिक, प्राकृतिक तथा 'पोर्ट्रेट' श्रेणियों में, रखी जा सकती हैं। प्राकृतिक दृश्यावली तथा 'पोर्ट्रेट' में, पंडित संसारचन्द बड़ू अग्रणी रहे हैं। परन्तु, सामाजिक तथा धार्मिक विषय में उनकी तिलिस्माती-तूलिका सचमुच अलौकिक है। प्राचीन कविता की तरह, मास्टर जी "स्पष्ट चित्र" को ही, कला की सर्वमान्य-अभिव्यक्ति, मानते रहे। उनकी 'महा सरस्वती' नामक पुरानी कृति, जम्मू के लिए एक अनुपम उपहार है। एक-एक रेखा से, भक्ति और श्रद्धा फूटती दिखाई देती है। सरस्वती के साथ अंकित प्राकृतिक हंस, कमल-पुष्प तथा अन्य विवरणों से भी, एक सम्मोहक सुन्दरता फूटती दिखाई देती है। हालांकि उनकी चित्रकला किसी विशेष 'लॉइन' का प्रतिनिधित्व नहीं करती। संसारचन्द बड़ू की तूलिका 'पूर्णता' की ओर, इंगित अवश्य करती है। अपने समय के जाने-माने पहाड़ी चित्र कलाकार श्री जगत राम छुनिया को, संसार चन्द ने सदा अपना "उस्ताद" माना। कविता की तरह, 'चित्रकला' की धारा बड़ू जी के अन्तर ही से, स्वयंमेव फूटी। उनका कहना है कि आत्माभिव्यक्ति के लिए, बचपन में ही उनकी कलम आड़ी-तिरछी (कलात्मक) लकीरें खींचती रहती थी। इससे, उनको एक विशेष सन्तोष प्राप्त होता था, जैसे मन-मस्तिष्क का एक प्रेरक लावा, सही दिशा की ओर दौड़ रहा हो। बड़ू जी के पिता पंडित धनपत एक दूरदर्शी व्यक्ति थे। बेटे की गहरी लगन देखकर, वे 14 वर्षीय किशोर को जगतराम जी के पास कला-साधनार्थ ले गए। संसारचन्द बचपन ही से स्वतन्त्र एवं स्वावलंबी बने रहे। कला क्षेत्र में भी, घिसी-पिटी लकीरों के साथ समझौता करने के बजाय, उन्होंने सदा अपनी प्रवृत्ति अनुरूप शैली अपनायी।

संसारचन्द बड़ू का जन्म 'मंदिरों के शहर' जम्मू के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-पुरोहित परिवार में, 24 अक्तूबर, 1904 को हुआ। प्राकृतिक कला-प्रतिभा ने उनका नाम देश के कोने-कोने में पहुंचाया। प्रारम्भ में, मास्टर संसारचन्द को एक 'कला-समीक्षक' के रूप में भी, पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई। कला साधना के कारण, उनकी लिखाई-पढ़ाई पर भी कुप्रभाव पड़ा। तत्कालीन 'प्रिंस ऑव वेल्स कॉलेज' (वर्तमान गांधी मेमोरियल साइंस कॉलेज) में, वे इंटर के विद्यार्थी थे। परन्तु, उस्ताद के मार्ग-दर्शन में, बड़ू साहब पहाड़ी-चित्रकला में डूब गए। निरंतर अभ्यास, रतजगों और सच्ची साधना के बल पर उन्हें तूलिका तथा रंग-पद्धति की सही पकड़ व आत्म-विश्वास की प्राप्ति हो गई। परन्तु, आर्थिक कठिनाइयों एवं लिखाई-पढ़ाई की कमजोरी के कारण,

संसारचन्द जी को कॉलेज-जीवन का परित्याग करना पड़ा। दूसरा आघात अपने प्रिय उस्ताद जगतराम जी के आकस्मिक निधन से, लगा। साधना को ही 'उस्ताद' मानते हुए, संसारचन्द बड़ू की महान कला-यात्रा निरन्तर जारी रही। जब-तब, वे लाहौर जाते और वहां आयोजित होने वाली दुर्लभ पुस्तक एवं चित्रकला-प्रदर्शनियों से, भरपूर कलात्मक ज्ञान संजो लाते। आरम्भ में, वे बंगाली-चित्रकला से भी काफी प्रभावित हुए थे। विश्व कवि रवींद्रनाथ टैगोर की तूलिका की तो वे पूजा करते थे। कालांतर में संसारचन्द बड़ू की कला विविध आयामी होती चली गई। उनकी यह मान्यता थी, कि : "सच्ची चित्रकला मौलिक कल्पना तथा तकनीकी-दक्षता का संगम होती है।" एक बार उन्होंने हंसी-हंसी में यह भी कहा था, कि : "डुग्गर पकवानों-मिष्ठानों की महक, मौसमी फल-तरकारियों और सुकोमल बच्चों में, सबसे बड़ी कलात्मक-प्रेरणाएं छुपी रहती हैं मेरे लिये !" प्रेम और प्रकृति की तूलिका, उनके लिये सब से बड़ी तूलिका थी। बहुत कम लोगों को मालूम है कि संसार चन्द बड़ू 'धरती की छत' लद्दाख के अलौकिक रहस्यों में, गहरी रुचि लेते थे। उन्होंने बौद्ध-स्तूपों, प्राचीन लद्दाखी-स्मारकों का गहन अध्ययन किया था। "तहदार लद्दाखी खोबानी" उन्हें बड़ी प्रिय थी।

मास्टर जी की कला-यात्रा ने कई विषम मोड़ भी देखे। विशेष रूप से, आरम्भिक काल अधिक चुनौतीपूर्ण सिद्ध हुआ। अमरसिंह टेक्नीकल इंस्टीच्यूट, श्रीनगर से उन्होंने पेशादाराना-चित्रकारी का पंचवर्षीय कोर्स, विशेष योग्यता के साथ पूर्ण किया। इस प्रशिक्षण के दौरान उन की वास्तविक प्रतिभा मुखरित हुई। बाद में, वे 'ड्राइंग-टीचर नियुक्त हुए। सन् 1928 में, उनकी प्रथम नियुक्ति मीरपुर (अब अधिकृत-कश्मीर) में हुई थी। यहां से उनका तबादला श्रीनगर में हुआ। अन्त में वे श्री प्रताप टेक्नीकल इंस्टीच्यूट, कच्ची छावनी, जम्मू में आ गए। (आजकल इस संस्थान के स्थान पर एक महिला हायर सेकेण्डरी स्कूल स्थापित हो चुका है।

वर्ष 1954 में डुग्गरवासियों ने, डोगरों की दुर्लभ सांस्कृतिक धरोहर सहेजने के लिए ज़ोरदार आवाज़ उठाई। और फिर, उसी वर्ष, जम्मू के 'गांधी भवन' में, "डोगरा आर्ट गैलरी" की स्थापना की गई। मास्टर जी को इस भव्य आर्ट गैलरी का प्रथम संरक्षक होने का, गौरव प्राप्त हुआ। नव-स्थापित आर्ट गैलरी के लिये दुर्लभ कला-वस्तुओं का संग्रह करना, उनके अथक साहस एवं संघर्षशीलता का, परिचायक है। आर्ट गैलरी की स्थापना में भी, मास्टर जी का बहुत बड़ा योगदान रहा है।

मास्टर जी 1957 में सेवा-निवृत्त हुए। परन्तु, प्रशासन ने उन्हें एक अतिरिक्त वर्ष की 'एक्सटेंशन' दी। वे राज्य की कला, संस्कृति एवं साहित्य

अकादमी की कार्यकारिणी कमेटी के भी, कई वर्षों तक, सक्रिय सदस्य रहे। डोगरा पहाड़ी लोक-कला ही से मुख्यत: प्रेरणा पाने वाले मास्टर जी ने, अपनी पूरी शक्ति मौलिक सृजन की ओर मोड़ दी और डुग्गर-संसार को अद्वितीय कृतियों से, समृद्ध किया। तैल-चित्रों पर भी उन्होंने खुलकर तूलिका चलाई। उनके बनाए हुए पोर्ट्रेट कला के सजीव नमूने हैं। गुलाब भवन, जम्मू में सज्जित महाराजा गुलाब सिंह का भव्य चित्र आकर्षण और कलात्मक विविधता का खजाना है। 'योद्धाओं' का, मास्टर जी द्वारा बनाया गया चित्र, हर कहीं, सराहा गया है।

महासरस्वती, भगवान कृष्ण, भगवान शिव आदि के पवित्र चित्र प्रेरणा और भक्ति के प्रकाश-पुंज प्रतीत होते हैं। मास्टर जी ने अपनी पत्नी, पुत्रों, बेटी और दामाद के मुंह-बोलते पोर्ट्रेट भी तैयार किये हैं। अपने पिता का चित्र उन्होंने पूरी सादगी तथा ममता के साथ, बनाया है। ये सभी चित्र उन्होंने अपने ड्राइंग-रूम में लगा रखे हैं। आगन्तुक इन चित्रों को देखकर, ठगे रह जाते हैं। 'शकुन्तला' का बहुरंगा चित्र, उनकी महान कलाकृति है। रंगों के चयन तथा शरीर-सौष्ठव की दृष्टि से, कला-मर्मज्ञों की, यह 'पहली पसंद' बताई जाती है। 'महात्मा बुद्ध' की पेंटिंग में, गौतम के सारे उपदेश और समस्त त्याग मुखरित प्रतीत होते हैं!

जम्मू धरती के इस प्रिय कलाकार पुत्र ने, अपनी जादुई चित्रकला-प्रदर्शनियों से, राज्य और देश को धन्य कर दिया। अपनी उच्चस्तरीय कला तथा अद्वितीय कृतियों के लिए, मास्टर जी का हर कहीं, हार्दिक स्वागत-सत्कार होता रहा। राजधानी दिल्ली में, मास्टर जी को 'डोगरा पहाड़ी चित्र कला' के एक सशक्त स्तम्भ के रूप में, जाना जाता है। मास्टर जी ने अपने घर को ही अपना भरा-पूरा स्टुडियो बना दिया था। उनके होनहार शिष्यों की संख्या भी कम नहीं है। अनेक शिष्यों ने, बड़ा नाम कमाया है। इनमें दिवंगत हेमराज और चंदूलाल के अतिरिक्त सर्वश्री देवदास, ओ० पी० शर्मा सारथी, विद्यारत्न, खजूरिया जियालाल आनन्द ('जिओ'), कृष्ण शर्मा इत्यादि उल्लेखनीय हैं। कला-संसार में, इन्हें बच्चा-बच्चा जानता है। अनेक शिष्यों ने कमर्शियल-आर्ट में तहलका मचाया। परन्तु उनकी कला पर पहाड़ी लोक-जीवन की अमिट छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

मास्टर जी की यह हार्दिक इच्छा थी, कि डोगरा आर्ट गैलरी को किसी उपयुक्त एवं आकर्षक इमारत में स्थानांतरित किया जाये। उनकी कामना तथा प्रयास रंग लाये। आज डुग्गर-संस्कृति का यह विपुल खजाना, मुबारिक मंडी स्थित 'पिंक-हॉल' में स्थापित है! डोगरा आर्टगैलरी में चुने हुए डोगरा-चित्र

तथा दुर्लभ कला-वस्तुएं विद्यमान हैं। देश-भर के कला-प्रेमी इन्हें देखने और सराहने, आते रहते हैं।

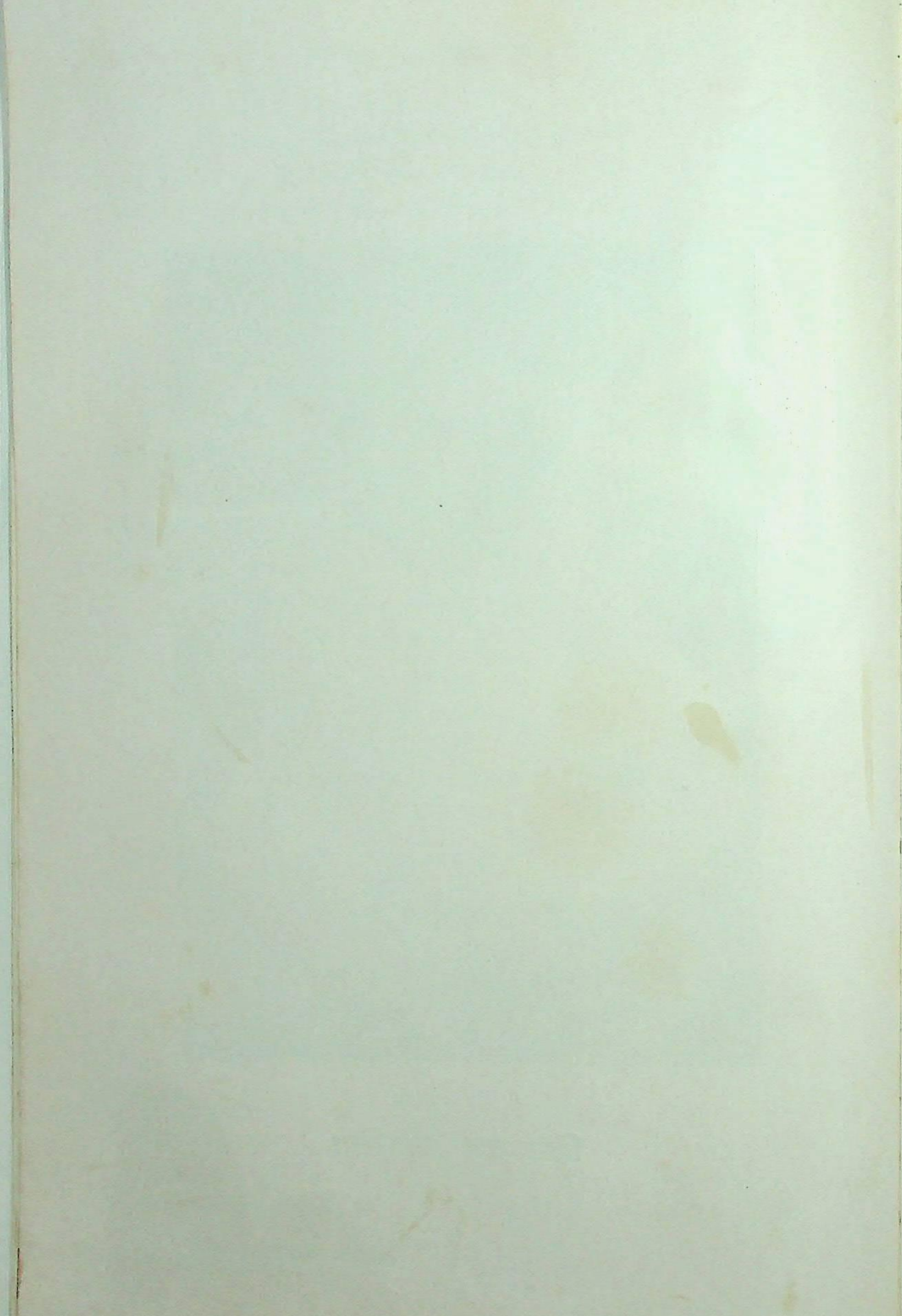
डोगरा पहाड़ी चित्रकला को दिये गये अन्यतम योगदान के लिये, रियासती कल्चरल अकादमी ने मास्टर संसारचन्द बड़ू को 1974 में "खिल्लत" देकर सम्मानित किया था। मास्टर जी प्रशंसा, आत्म-प्रचार तथा व्यापारिक-सोच से, कोसों दूर थे। उनके परिवार के हर सदस्य ने, बड़ू साहब के चित्र-के प्रति सम्मान तथा उत्साह प्रदर्शित किया है। मास्टर जी की प्रतिभाशाली पुत्री अनुराधा ऋषि ने भी, चित्रकला का पूरा प्रशिक्षण प्राप्त किया है। अनुराधा ऋषि की दर्जनों पेंटिंगें, कला-जगत का आकर्षण बन चुकी हैं। मास्टर जी के बेटे महेश शर्मा, रत्न चंद शर्मा तथा पोते-पोतियां भी कला के उत्कृष्ट पारखी और प्रेमी हैं। उनकी पत्नी कृष्णा ने आजीवन अपने कलाकर पति को सहयोग और प्रोत्साहन दिया।

मास्टर जी प्राचीन और वर्तमान चित्रकला के समान-रूप से प्रशंसक रहे नये कलाकारों को प्रोत्साहित करते रहे। उनके विचार में: "चित्र, कलाकार और दर्शक की आत्माओं के, बीच सेतु होता है।"

यह दीर्घजीवी कलाकार नब्बे वर्ष की आयु में, 1995 में ब्रह्मलीन होकर अपनी कला, प्रेरक उपलब्धियों और अन्यतम सेवाओं के लिए अमर हो गए। □



विद्या रत्न खजूरिया



मूर्त शिल्प विद्यारतन खजूरिया

□ बलजीत सिंह रैना

जहां जम्मू को मंदिरों का शहर होने का गौरव प्राप्त है, वहां उसके आस-पास कंडी का इलाका पत्थरों के लिए जाना जाता है। संसार के हर पत्थर में एक मूर्ति अवश्य छुपी होती है, परन्तु पत्थर में से उस मूर्ति को बाहर ले आने की कला तो केवल उस कलाकार के पास होती है जो पत्थरों में छुपी धड़कनों को महसूस कर सकता है।

किसी ने पत्थरों में धड़कनों की बात जब भी की,
बड़ी सुन्दर किसी शिल्पी ने तभी मूर्ति गढ़ ली।

जम्मू के इस कंडी इलाके का एक गांव है—'गुढ़ा स्लाथियां', जो तहसील सांबा में पड़ता है। पत्थरों के इस गांव ने कला संस्कृति एवं साहित्य में नाम कमाने वाले बहुत से विशिष्ट व्यक्ति हमारे देश को दिए हैं। सुप्रसिद्ध शिल्पी स्वर्गीय श्री विद्यारतन खजूरिया का जन्म भी 1934 में इसी गांव में एक मध्यम वर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। दरअसल यह कई पीढ़ियों से एक फौजी परिवार था। इनके दादा, परदादा भी महाराजा की फौज में रहते थे। इस फौजी पृष्ठभूमि ने श्री खजूरिया को एक सफल शिकारी तो बनाया, लेकिन उनके भीतर छुपे हुए कलाकार की प्रतिभा पर कोई अंकुश नहीं लगा पाई।

श्री खजूरिया ने सातवीं कक्षा तक एक स्थानीय स्कूल में शिक्षा ग्रहण की। परन्तु 1947 में जब देश के बंटवारे से परिवारों में एक हलचल हुई तो वे परिवार सहित नूरपुर, जिला कांगड़ा में जा बसे। 1948 में उन्होंने आर्य हाई स्कूल पठानकोट में आठवीं कक्षा में प्रवेश लिया और उसी स्कूल से 1951 में मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी वर्ष बंटवारे के हालात सामान्य होते ही परिवार सहित अपने गांव गुढ़ा स्लाथियां में लौट आए।

यहां आने के बाद उन्होंने जी० जी० एम० कॉलेज जम्मू में जियालोजी एवं जियोग्राफी विषय लेकर पढ़ाई आरम्भ की। अपनी पढ़ाई के दौरान चित्रकारी में उनकी विशेष रुचि रही। चित्रकारी के प्रति उनके आकर्षण ने उनकी आगे की पढ़ाई के लिए उनके दृष्टिकोण में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाया। उन्हीं दिनों वे सौभाग्यवश पहाड़ी चित्रकला के लिए विख्यात एक चित्रकार श्री संसार चन्द बड़ू के सम्पर्क में आये जो चित्रकला के जम्मू स्कूल के श्री जगत राम छुनिया जैसे सुप्रसिद्ध कलाकार के शागिर्द थे। चित्रकारी के प्रति उनकी रुचि ने उन्हें माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध कॉलेज छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया था और वे पूरी तरह से श्री संसार चंद बड़ू जी के साथ चित्रकला की साधना में जुट गए। इसी कारण उनके पारिवारिक माहौल में थोड़ा तनाव एवं कुछ समस्याएं भी उत्पन्न हो गयीं थीं। दरअसल कलाकार बनने के इस फैसले ने उनके माता-पिता को काफी हतोत्साहित किया था, जिसके कारण उन्होंने श्री खजूरिया के अध्ययन के लिए धनापूर्ति रोक दी थी। इस आर्थिक अभाव में एक कलाकार ने नौकरी कर ली। इसने इस विभाग के खूबसूरत 'लैंडस्केपों' का अध्ययन करने की उनकी वर्षों से दबी हुई इच्छा को पूरा कर दिया। दरअसल एक चित्रकार की हैसियत से उनकी सही मायने में शुरूआत कश्मीर वादी के स्वस्थ माहौल से ही हुई थी। सितम्बर, 1956 में श्रीनगर की औद्योगिक प्रदर्शनी में उन्हें समकालीन चित्र प्रदर्शनी में भाग लेने में लिए प्रथम निमत्रण मिला, जिसमें जम्मू-कश्मीर के सभी चित्रकारों ने भाग लिया था। इस चित्र प्रदर्शनी में कश्मीर के ही एक चित्रकार श्री जी० आर० संतोष को प्रथम और श्री बी० आर० खजूरिया को द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुए। इस पुरस्कार ने उन्हें बहुत प्रोत्साहित किया और उन्होंने कश्मीर वादी के 'लैंडस्केप्स' के अध्ययन में पूरी तरह से स्वयं को डुबो लिया। कृषि विभाग में नौकरी होने के कारण श्री खजूरिया को ऐसे बहुत से अवसर प्राप्त हुए जब वे कश्मीर के खूबसूरत गांवों में जाकर अपने 'लैंडस्केप्स' के लिए रेखांकन कर सके। उनकी चित्रकला साधना ने सफलता की एक और सीढ़ी पार की जब 1958 में उनके एक चित्र 'स्नोस्केप' को कश्मीर आर्टिस्ट सोसायटी की ओर से प्रथम पुरस्कार दिया गया। इसी प्रकार 1960, 61 और 62 में जम्मू-कश्मीर अकेडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एंड लैंगुवेजिज की ओर से प्रायोजित चित्र प्रदर्शनियों में 'लैंडस्केप' चित्रों के लिए उन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुए। श्री खजूरिया की चित्रकला प्राकृतिक दृश्यों की सौंदर्यानुभूति से आरम्भ हुई और आगे चलकर उनके प्रभाववादी एवं ऐबस्ट्रैक्ट शैली के चित्र भी सामने आए। 1962 में श्रीनगर में एक चित्र प्रदर्शनी में उनके एक ऐबस्ट्रैक्ट चित्र 'अज्ञात' को प्रथम पुरस्कार मिला। इसके बाद श्री खजूरिया ने जम्मू-कश्मीर से बाहर भारत के दूसरे राज्यों में भी अपनी पहचान बनायी

और उनके चित्रों का प्रदर्शन कलकत्ता फाईन आर्ट सोसायटी के सर्व भारतीय वार्षिक प्रदर्शनी में, ललित अकादमी दिल्ली में एवं आल इंडिया फाईन आर्ट सोसायटी अमृतसर में हुआ।

1961 को श्री खजूरिया ने श्रीनगर छोड़ा और जम्मू लौट आए। यहां उनकी अतिरिक्त शैक्षणिक योग्यता को देखते हुए विशेषकर प्राचीन पहाड़ी चित्रकला के क्षेत्र में उनके कार्य को देखते हुए उन्हें डोगरा आर्ट गैलरी में 'क्यूरेटर' का पद भार सौंपा गया। इस प्रकार उनकी सच्ची लगन एवं सौभाग्य से उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु कला के क्षेत्र में अध्ययन की पूरी व्यवस्था एवं अवसर प्राप्त होने के बावजूद श्री खजूरिया संतुष्ट नहीं थे। जब 1966 में जम्मू-कश्मीर अकादमी की ओर से उन्हें 'स्कालरशिप' मिली तो उन्होंने एम० एस० विश्वविद्यालय बड़ौदा में मूर्तिशिल्प का अध्ययन करने के लिए जाना स्वीकार कर लिया। बड़ौदा में उन्होने श्री साखी चौधरी, श्री मोहिन्दर पांइया और अन्य वरिष्ठ शिल्पियों की देख-रेख में कार्य आरम्भ किया। 1970 में श्री खजूरिया मूर्तिकला में स्नातक की उपाधि प्राप्त कर जम्मू लौट आए। जम्मू आते ही उन्हें 1970 में ही इंस्टीट्यूट ऑफ म्यूज़िक एंड फाईन आर्ट्स जम्मू के मूर्तिकला विभाग में लैक्चरर की नौकरी मिल गयी। इसी वर्ष बंबई की जहांगीर आर्ट गैलरी में उनकी प्रथम एकल प्रदर्शनी आयोजित हुई। उन दिनों श्री खजूरिया की आर्थिक स्थिति यह थी कि उनको पांच रुपये तक जुटाना भी कठिन था। इसलिए उन्होंने बम्बई के ही एक स्थानीय विक्रेता का सहारा लिया जो कलाकृतियों के व्यापार से सम्बन्ध रखता था। उसने सुझाव रखा कि वह प्रदर्शनी का सारा खर्च वहन करेगा जिसके बदले में मूर्तिशिल्प की बिक्री से हुई आय को आधा-आधा बांट लिया जाएगा। श्री खजूरिया भाग्यशाली रहे। उन्होंने जिन पन्द्रह कलाकृतियों की प्रदर्शनी लगायी थी वो सभी बिक गयीं। इसके बाद उनकी बम्बई में ही 1972, 1974, 1975, 1977, 1979, 1981, 1985, और 1987 में स्वतन्त्र प्रदर्शनियां लगीं। बंबई की ताज आर्ट गैलरी में 13 जनवरी 1976 को उन्होंने हिमालय संगमरमर पर अपने मूर्तिशिल्प की प्रदर्शनी के दूसरे ही रोज अपनी एक चिट्ठी में इस प्रदर्शनी के बारे में लिखा था :

" कल 'एंग्ज़ीबिशन' शुरू की थी। दो कलाकृतियां 12 जनवरी को प्रदर्शनी को तैयार करते समय ही बिक गयी थीं फिर सभी बिक गयीं। चलो, 'मारबल' का और हमारा आने-जाने का खर्चा निकल गया। कल पहला दिन था, बहुत से लोग प्रदर्शनी देखने के लिए आये थे। इस बार यहां के हालात इतने साजगार नहीं। लोगों के पास पैसा बहुत है लेकिन डरे हुए

निकलते नहीं । मुझ से पहले दो कलाकारों की प्रदर्शनियां लग चुकी हैं, सुना है उनकी कोई मूर्ति बिकी नहीं..."

कला आलोचकों ने उनकी मूर्तियों में से अभिव्यक्त होती हुई कविता की प्रशंसा की। कुछ मूर्तियों में सुराखों, रिक्त स्थानों एवं मोड़ों को बुद्धि का कमाल कहा, उनके द्वारा बनाए मानवीय बुतों, विशेषकर स्त्री की निर्बस्त्र आकृतियों में उन्हें विशेष दक्षता रखने वाला शिल्पी कहा। अपनी कला के बारे में श्री खजूरिया का कथन इस प्रकार था—'मेरी कलाकृतियां विशुद्ध स्वतन्त्र रूप हैं, वे सचेत हैं, आकस्मिक नहीं हैं। परन्तु साथ ही विशुद्ध 'एवस्ट्रैक्टस' भी हैं।" वे अधिकतर स्थानीय एव उपलब्ध संगमरमर पर ही काम करना पसन्द करते थ, विशेषकर सलेटी एवं काले किस्म के संगमरमर पर। हालांकि स्त्री अंगों पर उनका काफी कार्य था, लेकिन बाद में 'सेमी-एबस्ट्रेक्ट' और फिर 'एबस्ट्रेक्ट' मूर्तियां बनाने की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने न केवल कुछ खास किस्म के पत्थर खोजे बल्कि उन्हें सार्थक आकार भी दिए। कहना न होगा कि कलाप्रिय संवेदनशील सुश्री राज भारती की प्रेरणा आजीवन उनके साथ रही। जिसने उनके कलाकार को ख्याति के सर्वोच्च शिखर तक पहुंचाने में एक उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

दंभ से दूर वे सहज, स्नेहिल और मृदुभाषी व्यक्ति थे। सबसे खुले दिल और गर्मजोशी से मिलते थे।

गांधी नगर जम्मू में उनका घर एक आर्ट गैलरी और एक कार्यशाला में भी परिवर्तित हो चुका था। श्री खजूरिया के शिष्य न केवल उनके सिखाने के ढंग से ही प्रभावित थे बल्कि उनकी संगति में उन्हें जो एक अपनत्व की अनुभूति का संतोप था उसे याद कर आज भी उनकी आंखों में श्रद्धा का सागर उमड़ आता है। वे अपने शिष्यों पर अपने बच्चों से भी बढ़कर स्नेह लुटाते थे। दरअसल मनुष्य हमेशा से ही चाहता आया है कि उसके शुरू किए हुए कार्य को आगे बढ़ाने वाला कोई हो। शायद यही कारण था कि वे अपने शिष्यों पर इतनी मेहनत करते थे। वे उनके गुरु ही नहीं बल्कि मित्र भी थे। काम के बाद थक जाने पर कभी-कभार 'पीते' समय वे अपने शिष्यों को भी साथ बैठा लिया करते थे। उस समय वे उनके केवल मित्र होते। वे बताने लगते कि मूर्तियां गढ़ने से पहले वे रंगों से चित्र बनाते थे और चित्र बनाने से पहले वे एक फौजी पिता के बहादुर शिकारी बेटे थे। एक बार बन्दरों को परेशान करने वाले एक खतरनाक चीते को मारने के लिए उन्हें सप्ताह भर जागना पड़ा था। जंगल में लम्बी प्रतीक्षा के बाद सातवें दिन अंधेरे में जब चीते से एकदम उनका सामना हो गया तो उस चीते की आंखे अंगारों-सी

दहक रही थीं। उन्होंने सोचा भी नहीं था कि इस तरह अचानक चीते से सीधा सामना हो जाएगा। लेकिन जल्दी ही वे संभल गए और उनकी दोनाली से निकले दो फायर उस खतरनाक चीते का काल वन गये।

5 दिसम्बर, 1990 को फौजी पिता के शिकारी बेटे, कश्मीर वादी के 'लैंडस्केप' वनाने वाले, जम्मू की पहाड़ी चित्र-कला परशोध पुस्तकें लिखने वाले, डुग्गर प्रदेश के ऐतिहासिक नायक बाबा जित्तो की 18 फुट ऊंची सफेद सीमेंट से मूर्ति वनाने वाले कलाकार, देश के विभिन्न नगरों में मूर्तिशिल्प के खूबसूरत नमूने छोड़ जाने वाले, अपने शिष्यों के गुरु—श्री विद्यारतन खजूरिया—महानिद्रा में लीन हो गये। परन्तु उनके हाथों से तराशे हुए 302 के करीब पत्थर जो आज बोलते हैं और देश-विदेश में सुशोभित हैं—ये सभी कलाकृतियां उस स्वयंसिद्ध, मूर्त्त शिल्प की गौरव गाथाएं हैं। □

लाला मेहरचन्द महाजन

□ ओ. पो. शर्मा

श्री मेहरचन्द महाजन जी का जन्म, 23 दिसम्बर, 1889 में हिमाचल-प्रदेश, ज़िला कांगड़ा के गांव टिक्का नगरोटा में हुआ । उनके पिता श्री बृजलाल महाजन एक प्रख्यात वकील थे, धर्मशाला में जिनका सिक्का जमा हुआ था । गंडमूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण, कुछ समय के लिए उन्हें अपने माता-पिता के प्रेम से वंचित रहना पड़ा । इन का पालन-पोषण एक श्री माया और रुकतु नामी राजपूत दम्पत्ति ने किया । बारह वर्ष बाद जब उनके माता-पिता उन्हें घर लाये तो एक उत्सव जैसा मनाया गया, जिसमें 500 ब्राह्मणों को भोजन करवाया गया । प्रारम्भिक शिक्षा के बाद उन्होंने दसवीं की परीक्षा, सैंट्रल स्कूल लाहौर से पास की । फिर 1910 में गवर्नमैंट कालेज लाहौर से बी० ए० तथा 1912 में कानून की डिग्री ली । 1943 में उन्हें पूर्वी-पंजाब की हाईकोर्ट का जज बनाया गया ।

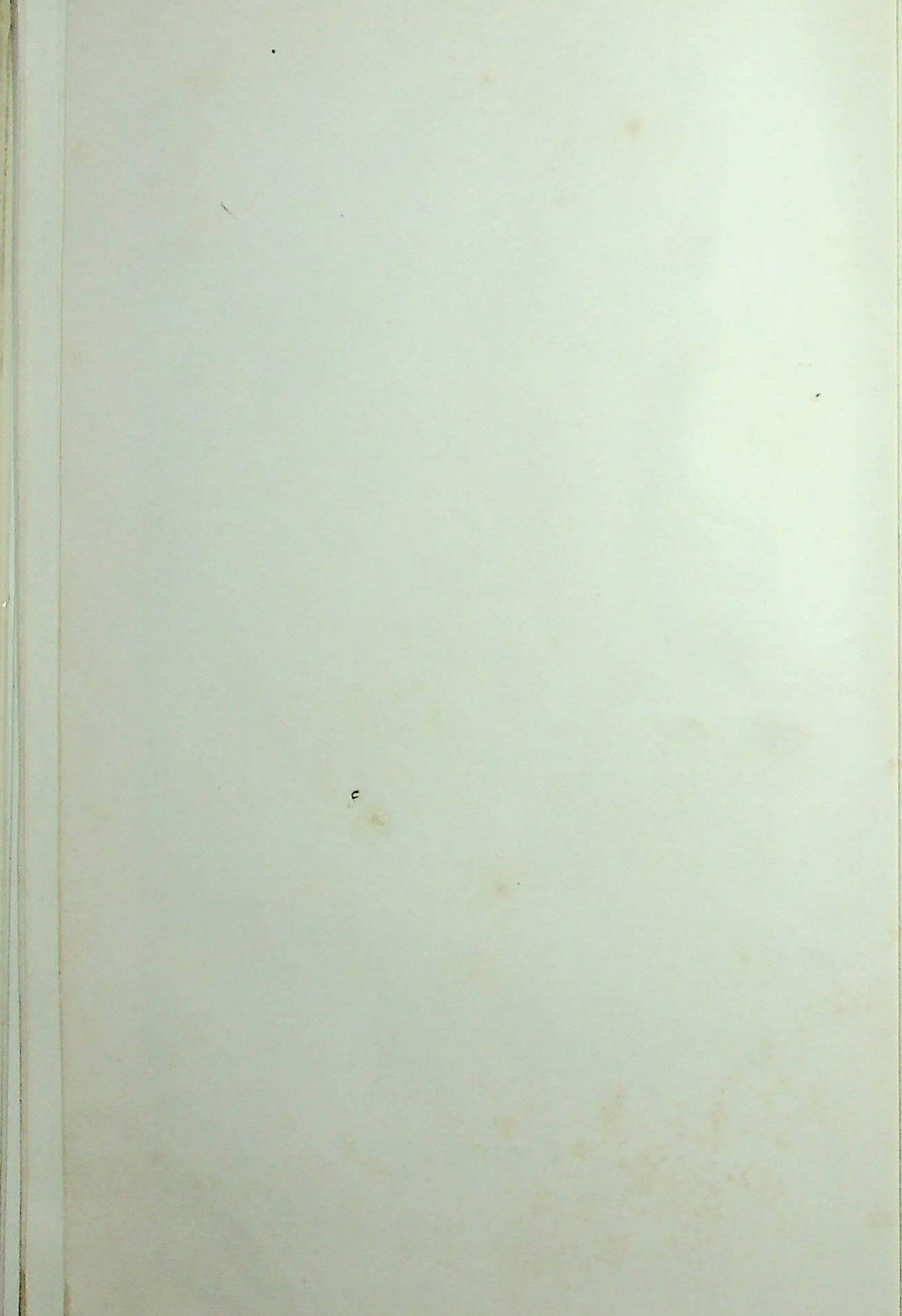
श्री मेहरचन्द महाजन जम्मू के प्रतिष्ठित वकील और कुशल प्रशासक थे । कुशाग्र बुद्धि होने के कारण, धर्मशाला, हिमाचल-प्रदेश में उनकी वकालत बहुत ज्यादा थी । वह जटिल से जटिल मुकद्दमों को आनन-फानन में सुलझाने में सिद्धहस्त थे । उन्होंने, वकालत गुरदासपुर में शुरू की, बाद में, लाहौर में और फिर, वहीं हाई कोर्ट के जज भी नियुक्त हो गये ।

देश का विभाजन काल जम्मू-कश्मीर रियासत के लिए कठिन अग्नि परीक्षा का समय था । संकट के इस समय, रियासत के महाराजा हरिसिंह ने श्री मेहरचन्द महाजन को रियासत के प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त किया । अपनी अनूठी प्रतिभा के कारण, बाद में वह भारत के सर्वोच्च न्यायमूर्ति कहलाये ।

श्री मेहरचन्द महाजन अखिल भारतीय महाजन सभा के प्रधान भी रहे । उनके द्वारा जम्मू-कश्मीर राज्य में किये गये उल्लेखनीय कार्य स्वर्णाक्षरित इतिहास है, जिसे लोग सदा स्मरण रखेंगे ।



मेहर चन्द महाजन



देश के विभाजन से पहले, अंग्रेज शासकों ने श्री मेहरचन्द को भारत-पाकिस्तान सीमा नियन्त्रण कमिश्नर का सदस्य बनाया। सीमा नियन्त्रण का फ़ैसला तत्कालीन वायसराय हिन्द को करना था। उनकी इस पद पर नियुक्ति जम्मू-कश्मीर के लिए लाभकारी सिद्ध हुई। पंजाब में गुरदासपुर का ज़िला, भारत को मिला और जिस कारण रियासत का सीधा सम्पर्क पठानकोट-कठुआ राजमार्ग द्वारा भारत के अन्य भागों से सम्भव हो गया।

भारत को आज़ादी तो मिली, परन्तु अंग्रेज़ जाते-जाते देश के टुकड़े कर गये। अंग्रेज़ों ने, भारत के 565 रियासती राजाओं को इस बात की पूरी छूट दे रखी थी कि वे अपनी इच्छानुसार भारत अथवा पाकिस्तान से अपनी रियासतों का विलय कर सकते हैं। उन दिनों, जम्मू-कश्मीर रियासत में डोगरा राजा हरिसिंह का शासन था, और उन पर दोनों तरफ से पूरा दबाव डाला जा रहा था कि यह पाकिस्तान में मिले या भारत के साथ अपने सम्बन्ध जोड़ें। महाराजा वहुत बड़ी दुविधा में थे और उन्होंने यथास्थिर दोनों देशों को "सैंटर्ड सैंटिल एग्रीमैंट" की पेशकश की। पाकिस्तान ने तो इसे स्वीकार कर लिया, लेकिन भारत ने इस पर कोई फैसला नहीं लिया। रियासत में बहु-संख्यक आबादी मुसलमानों की थी और पाकिस्तान द्वारा उन पर दबाव डाला जा रहा था कि वह महाराजा को पाकिस्तान के साथ मिलने के लिए मजबूर करें। ऐसे कठिनाई के दौर में हरिसिंह की नजर एक ऐसे इन्सान की तलाश में थी, जो उन्हें इस उलझन से बाहर निकलने में मदद करता।

महाराजा की पारखी दृष्टि ने श्री मेहरचन्द महाजन का चयन किया और उन्होंने जम्मू-कश्मीर रियासत के प्रधानमंत्री पद के लिए उन्हें आमंत्रित किया। मेहरचन्द ने, 15 सितम्बर, 1947 को इसका दायित्व सम्भाला। उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस कठिन दौर में कश्मीर का भ्रमण किया और महाराजा से एक लम्बे परामर्श के बाद रायचन्द काक को सेवाओं से निवृत्त कर दिया और उसके बदले मेहरचन्द महाजन की नियुक्ति प्रधानमंत्री के पद पर कर दी। प्रधानमंत्री बनने से पहले, श्री महाजन लाहौर हाईकोर्ट में जज थे और उन्होंने वहां अवकाश प्राप्त कर यह पद स्वीकार किया। जम्मू-कश्मीर में अपनी इस नई जिम्मेदारी को सम्भालने से पहले उन्होंने तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू तथा उपप्रधान मन्त्री सरदार बल्लभभाई पटेल और अन्य नेताओं से मुलाकात की। और रियासत जम्मू-कश्मीर के हालात से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर तफसील से बातचीत की थी।

दूसरी तरफ, मुहम्मद अली जिनाह जम्मू-कश्मीर की रियासत को "टू नेशन थ्यूरी" के आधार पर हासिल करना चाहते थे। मुस्लिम वर्ग ने जिनाह

की इस थ्यूरी को बिल्कुल नहीं माना। वह सोचते थे कि कश्मीर उन्हीं का है, लेकिन इस सिलसिले में उन्हें हताश ही होना पड़ा।

पाकिस्तान के बानी मुहम्मद अली जिनाह का राजदूत महाराज के पास उनका पत्र लेकर आया कि बीमारी के कारण वह महाराज के पास स्वयं नहीं आ सकते हैं। डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी है कि जल्द सेहतयाबी के लिए उन्हें कुछ समय कश्मीर में रहने दिया जाए। ऐसा करने का उनका स्पष्ट अर्थ था कि महाराजा को पाकिस्तानी तत्वों की सहायता से हटाया जाये। मुहम्मद अली जिनाह के नुमायदों ने, इस मकसद के लिए यहां बहुत-सा समय सांप्रदायिक दंगे भड़काने की नाकाम कोशिश में गुज़ारा।

सभी प्रयत्नों से विफल होकर घायल शेर की तरह पाकिस्तान ने कबाइलियों की सहायता से जम्मू-कश्मीर रियासत के सीमावर्ती क्षेत्रों में 21 अक्तूबर, 1947 में घुसपैठ करवा दी। और कबाइलियों ने विध्वंस मचा दिया मुट्ठी भर डोगरा सैनिक, पूरी बहादुरी के साथ हर सीमा क्षेत्रों पर लड़ रहे थे उस समय महाराज ने केन्द्रीय सरकार से सैनिक सहायता मांगी। इस उद्देश्य के लिए, उन्होंने प्रधान मन्त्री मेहरचन्द महाजन को अपना निजी पत्र देकर भेजा। सब से पहले तो भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरू ने यह कह कर उन्हें लौटा दिया कि जब तक जम्मू-कश्मीर रियासत का भारत के साथ विलय नहीं किया जाता, तब तक भारतीय सेना को वहां नहीं भेजा जायेगा। उसी समय, नेशनल कांफ्रेंस के नेता, शेख मुहम्मद अब्दुल्ला, ने पं० नेहरू से बातचीत की, जिस पर वह तुरन्त भारतीय सेना को भेजने के लिए मान गये। 23 अक्तूबर, 1947 की ऐतिहासिक "इंट्रूमैंट ऑफ अस्पेशन" तैयार किया गया जिस पर महाराज हरिसिंह ने अपने हस्ताक्षर किये और भारत सरकार ने इसे स्वीकार भी कर लिया। नेशनल कान्फ्रेंस उस समय रियासत में लोकप्रिय रालनैतिक दल था, जिसे लोगों का पूर्ण सहयोग प्राप्त था।

भारतीय सेना ने पाकिस्तान फौजों को खदेड़ दिया और फिर संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्ताक्षर करने पर, जनवरी 1, 1948 को शांति बिगुल बजा और जम्मू-कश्मीर रियासत के मीरपुर, भिम्बर, कोटली, मुजफ्फराबाद, हुजा, स्कार्दु, गिलगित आदि इलाके पाकिस्तान के कब्जे में चले गये जिसके कारण अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। राज्य का शासनतन्त्र तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति डांवाडोल हो गयी। यहां तक कि जरूरी वस्तुओं की आपूर्ति करना भी असम्भव था। ऐसे में, श्री महाजन ने अपनी भरपूर प्रशासन कुशलता का ज्वलंत उदाहरण दिया। उन्होंने नागरिक प्रशासन को पुनः स्थापित किया और आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति के लिए अनेक पग

उठाये । उन्होंने, बहुत से क्रान्तिकारी फैसले लेकर विभाजन से प्रभावित शिविर लगाकर शरणार्थियों की सहायता की।

जम्मू-कश्मीर रियासत को भारत के अन्य भागों से जोड़ने के लिए जम्मू-पठानकोट सड़क का निर्माण किया गया, जिसके कारण आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति रियासत में सहज हो गयी । मेहरचन्द महाजन को महाराजा का पूर्ण विश्वास प्राप्त था ।

लाला मेहरचन्द के प्रधान मंत्री काल में ही शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को आपातकालीन प्रशासन का मुख्य बनाया गया और उसके वाद इनको महाराजा ने मार्च 6, 1948 को अपना पद छोड़ने की स्वीकृति भी दे दी । इसके बाद मेहरचन्द ने बीकानेर रियासत के संविधान के सलाहकार के पद पर कुछ समय काम किया । वहां उन्होंने अनेक सुधार के कार्यक्रम चलाये । अवकाश का कार्यकाल पूरा होने पर उन्होंने पुन: पंजाब के हाईकोर्ट में जज का पदभार सम्भाल लिया । अक्तूबर, 1948 में उनकी भारत की सर्वोच्च न्यायालय में बतौर न्यायाधीश नियुक्ति हुई । उनके द्वारा न्याय सम्बन्धी किये गये सभी काम सराहनीय है । बाद में जनवरी, 1954 में वह सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायधीश भी बने ।

श्री मेहरचन्द महाजन अपने युग के महान समाज-सुधारक, राजनीतिज्ञ सफल प्रशासक और दूरदर्शी अधिकारी तथा कानून दान थे, जिन्होंने जन-कल्याण के बहुत से काम किये । उन्होंने अपनी आत्मकथा "लुकिंग बैक" में विस्तारपूर्वक एक कानूनदान, राजनैतिक, प्रशासक, समाज-सुधारक के तौर पर किये गये कामों का पूरा लेखा-जोखा दिया है, जो हम सबके लिये ज्ञान का प्रकाश है । □





Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU & Printed at ROHINI PRINTERS, Kot Kishan Chand, JALANDHAR (Pb.)